बालकोपयोगी—पुस्तकमाला अङ्क ५.

संक्षिप्त-मनुस्मृति

संग्रहकर्त्ता,

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा

सन् १९२२.

संक्षिप्त-मनुस्मृति

अर्थात्

हिन्दुओं के वैदिक धर्म्म का गुटका

संग्रहकर्त्ता,

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा

"इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्द्धनम्
इदं यशस्य मायुष्य मिदं निःश्रेयसं परम्"
—मनु-स्मृति अ० १, श्लोक १०६

प्रकाशक

नेशनल प्रेस, प्रयाग

[मूल्य पाँच आना

तृतीय संस्करण]

चतुर्वेदी द्वारका-प्रसाद शर्म्मा-कृत

उपहार

"बालकोपयोगी-पुस्तकमाला" का यह पाँचवाँ अंक और आर्य्य जाति की प्राचीनतम सभ्यता का आदि इतिहास "संक्षिप्त-मनुस्मृति" हम उन भोले भाले बच्चों को उपहार में देते हैं, जिन्हें देखने से हमारे हृदय में आनन्द की तरङ्गें उमड़ने लगती हैं और जिनकी नैतिक-ज्ञान-वृद्धि के ऊपर इस देश की सम्पत्ति-वृद्धि निर्भर है।

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा

ग्रन्थ-परिचय

—:०:०:—

जिस समय भारतवर्ष का शासन आर्य्य सम्राटों के हाथ में था, उस समय मनुस्मृति के अक्षर अक्षर का पालन उसी तरह होता था, जिस तरह वर्त्तमान अङ्गरेज़ी साम्राज्य में "इण्डियन पीनल कोड" और "सिविल प्रोसीडर कोड" का हो रहा है।

जिस तरह दण्ड और सम्पत्ति सम्बन्धी व्यवस्था आजकल वकील बैरिस्टरों से ली जाती है, वैसे ही किसी समय इस आर्य्य-दण्ड-नीति-विधान अर्थात् मनुस्मृति के ज्ञाता ब्राह्मण समझे जाते थे। मनुस्मृति अध्याय १ के १०६वें श्लोक में, ग्रन्थ की महिमा में लिखा है कि "मनु-स्मृति यश और आयु की बढ़ाने वाली और मनुष्य के कल्याण का सर्वोत्तम साधन है।"

मनु-स्मृति, ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों के विधि-पूर्वक कार्य्य और अकार्यों को बतलाने के लिये स्वायम्भुव मनु ने रची है। अच्छी तरह से इस धर्म्म शास्त्र को पढ़ना चाहिये। क्योंकि जो धर्म्म-शास्त्र नहीं जानता, उसका जन्म निष्फल जाता है। धर्म्म न जानने वाला मनुष्य, मनुष्य नहीं है। वह पशु है।

वेद में भी मनु की बनाई स्मृति की प्रशंसा की गई है। लिखा है, मनु की स्मृति मनुष्यों के लिये उसी तरह कल्याण-दायिनी है, जैसे बीमार के लिये औषध। जैसे मकान की नींव दृढ़ करने की आवश्यकता होती है—वैसे ही मनुष्य रूपी घर

की नीव, विना मनुस्मृति पढ़े और उसमें बतलाये धर्म्मानुष्ठान के कभी दृढ़ नहीं हो सकती।

मनुष्यों को बाल्यावस्था ही में यदि इस परमोपयोगी धर्म्म-शास्त्र का ज्ञान करवा दिया जाय, तो आगे चल कर, वे कभी सत्-मार्ग से च्युत नहीं हो सकते। उसकी धर्म्म-निष्ठा में कभी व्याघात नहीं पड़ सकता। वे धर्म्म के स्वरूप को भली भाँति जान सकते हैं। इसीलिये इस उपयोगी संग्रह को हमने सरल रीति से, हिन्दी भाषा में बनाया है।

"सृष्टि प्रकरण' के पढ़ने से विदित होगा कि सृष्टि की आदि में मनु का जन्म हुआ और वेदों के साथ ही साथ इस स्मृति का भी जन्म हुआ था। यह बड़ा पुराना धर्म्म-ग्रन्थ है। जो वैदिक धर्म्म मानने वाले हैं, वे मनुस्मृति का वेद के बराबर ही आदर करते हैं। क्या वैष्णव, क्या शैवी, क्या आधुनिक परिष्कृत वेदानुयायी-सभी, मनुस्मृति को आदर की वस्तु समझते हैं।

इस प्राचीन ग्रन्थ-रत्न में श्राद्ध, एवम् मूर्त्ति-पूजा की चर्चा भी मिलती है; जिसे कुछ पुराण-विरोधी प्रक्षिप्त बतलाते हैं। यदि इन विषयों को, थोड़ी देर तक, तर्क के लिये, हम क्षेपक ही मान लें, तो भी वे मूल-ग्रन्थ में इस तरह प्रक्षिप्त किये गये हैं कि उनके निकालने से मूल-ग्रन्थ अङ्ग भङ्ग हो जाता है। हमने जहाँ जिस स्थल पर इन आवश्यक और अनुष्ठेय कर्म्मों का प्रकरण आया है—वहाँ पाद-टिप्पणी (Foot-notes) में इन विषयों का स्पष्टीकरण भी कर दिया है।

इस स्वार्थ-पूर्ण और आलस्य-पूरित युग में, लोगों को प्रत्येक ग्रन्थ में क्षेपक दिखलाई पड़ते हैं क्षेपक की परिभाषा यही है कि जो बात अपनी परिमित बुद्धि में न आवे, जो आजकल की

पाश्चात्य-सभ्यता के विरुद्ध हो और जिसके साधन में व्यय और कष्ट हो—वही प्रक्षिप्त विषय है। हमें इससे कुछ भी प्रयोजन नहीं कि मनुस्मृति में प्रक्षिप्त विषय कौन कौन से हैं। यह स्मृति बड़ी प्राचीन है। इसके प्रमाण हमारे पूर्वाचार्य्यों ने अपने धर्म्म-ग्रन्थों में उद्धृत किये हैं। इसलिये हमें जो मनुस्मृति अब उपलब्ध है वही मान्य है। श्रौत-स्मार्त्त धर्म्म की भित्ति इसी पर टिकी है।

मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में, ११८ ; दूसरे में, २४९ ; तीसरे में, २८६ ; चौथे में, २६०; पाँचवें में, १६९ छठवें में, ९७ ; सातवें में, २२६ ; आठवें में ४२० ; नवें में, ३३६ ; दशवें में, १३१ ग्यारहवें में, २६६ और बारहवें में, १२६ श्लोक हैं। ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों के विधि-पूर्वक कर्त्तव्याकर्त्तव्य के निर्णय के निमित्त, स्वायम्भुव मनु ने यह स्मृति रची है। यत्न पूर्वक इस शास्त्र को पढ़ना, ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है। मनु की आज्ञा है कि विद्वान ब्राह्मण ही शिष्यों को यह पूरा शास्त्र पढ़ावें, अन्य कोई वर्ण वाला इसे पढ़ाने का अधिकारी नहीं है।

इस स्मृति में सारे धर्म्म कहे गये हैं। सब कर्म्मों के गुण दोषों का विचार किया गया है। और चारों वर्णों के सनातन आचार बतलाये गये हैं। मनु जी सर्व-ज्ञान-मय थे, इस लिये उन्होंने अपनी 'स्मृति' में जो कुछ धर्म्म कहा है—वह वेदों में ज्यों का त्यों मिलता है। कवि-कुल-तिलक कालिदास की यह उपमा " श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् " मनुस्मृति में पूरी पूरी घटती है।

श्रुति-स्मृति में कहे हुए धर्म्म कर्म्म करने को मनुष्य को इस लोक में कीर्त्ति और परलोक में सुख मिलता है। वेद को " श्रुति "

और धर्म्म शास्त्र को "स्मृति" कहते हैं। इनमें वर्णित विषय विचार और तर्क के परे हैं। मनु जी ने द्वितीय अध्याय के १० वें श्लोक में लिखा है :—

"जो ब्राह्मण हेतु शास्त्र अर्थात् कुतर्क अवलम्बन कर के, श्रुति-स्मृति को अमान्य ठहराता है, वह वेद-निन्दक है, नास्तिक है और समाज से निकाल देने योग्य है।"

मनुस्मृति वेद का समकालीन ग्रन्थ है। इसमें वर्णित यम नियम, सदाचार तथा शिष्टता के नियमों के देखने से जान पड़ता है कि भारत-वासियों की सभ्यता बहुत पुरानी है। भारतवासी ही पृथिवी की आदि सभ्य जाति हैं। यहाँ सभ्यता उस समय विद्यमान थी, जिस समय पृथिवी की अन्यजातियाँ घोर अन्धकार में पड़ी थीं। इस देश की सभ्यता का इतिहास इतना पुराना है कि अन्य-जातियों की समझ में उसकी प्राचीनता नहीं समाती और वे इस देश की सभ्यता के प्राचीनत्व को अपनी सभ्यता के आरम्भ काल के कुछ ही वर्षों पूर्व टटोलते हैं। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है।

इस संग्रह में हमने अध्याय के अनुसार विषय संग्रह किये हैं। साथ ही प्रत्येक विषय का शीर्षक भी दे दिया है। विषय सूची के देखने ही से, जो जिस विषय को देखना चाहे, झट देख सकता है। विषय-सूची के देखने से प्रत्येक अध्याय में वर्णित विषय अवगत हो जाते हैं।

अगर हिन्दी के प्रेमियों ने इस संग्रह का आदर किया, तो हम आगे चल कर, " पाराशर-स्मृति-संग्रह " नाम की पुस्तक भी शीघ्र लिखेंगे। क्योंकि मनुस्मृति सर्व-मान्य होने पर भी, युग भेद से, कलियुग में, पाराशर-स्मृति ही को ऋषियों ने मान्य ठहराया है। लिखा भी है " कलौ पाराशर स्मृताः "।

प्रयाग,
कार्तिक शुक्ला १५, सं० १९६७. } चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा।

विषय-सूची

—:०:—

[पहिला अध्याय]

[दूसरा अध्याय]

[तीसरा अध्याय]

[चौथा अध्याय]

[पाँचवाँ अध्याय]

[छठवाँ अध्याय]

[सातवाँ अध्याय]

[आठवाँ अध्याय]

[नवां अध्याय]

[दसवां अध्याय]

[ग्यारहवाँ अध्याय]

[बारहवाँ अध्याय]

संक्षिप्त-मनुस्मृति

पहिला अध्याय

सृष्टि रचना-प्रकरण

पहिले पहिल चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था। इसके बाद प्रकाश उत्पन्न हुआ। फिर सनातन परब्रह्म स्वयं शरीर धारण कर, प्रकट हुए। उन्हीं ने अपने शरीर से भाँति भाँति की प्रजा रचने की इच्छा से पहिले जल बनाया। उस जल में शक्ति रूपी अपना बीज डाला। इससे सोने की रङ्गत का सूर्य्य की तरह चम चमाता एक अण्डा उत्पन्न हुआ। उस अण्डे से सब के बाबा ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

ब्रह्मा जी ने विश्व को दो भागों में बाँटा। ऊपर के भाग में स्वर्ग आदि लोकों को रचा और नीचे के खण्ड में पृथिवी बनायी। दोनों खण्डों के बीच में आकाश, आठो दिशाएँ* तथा समुद्रों की

* पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चार दिशाएँ, और ईशान नैऋत्य, वायव्य और अग्नि चार विदिशाएँ कहलाती हैं।

रचना की। इसके बाद ब्रह्मा जी ने मन बनाया। मन के बाद महत्तत्व और अहङ्कार की रचना की गयी। फिर उन्होंने इन्द्रियों का रचा। फिर महत्तत्व और अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्रा* से, जगत् की रचना की गयी।

फिर देवता, साध्य और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों की सृष्टि की गयी। ब्रह्मा जी ने अग्नि, वायु और सूर्य्य से यज्ञ कार्य्य के लिये क्रम से ऋक, यजु और साम नाम के तीन वेदों को रचा। इसके बाद प्रजा बनाने की इच्छा से उन्होंने काल, नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत, ऊँची नीची पृथिवी, तपस्या, वाक्य, चित्त की प्रसन्नता, काम और क्रोध की रचना की।

कर्म्म का विभाग करने के लिये ब्रह्मा जी ने धर्म्म और अधर्म्म बनाया और इनको प्राणियों के सुख दुःख का कारण ठहराया। फिर बड़े से बड़े और छोटे से छोटे प्राणी बनाये। परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में जिन्हें जिस कर्म्म में लगाया, वे बारम्बार जन्मने पर भी, वही काम करने लगे। अर्थात् हिंसा अहिंसा, मृदुता, क्रूरता, धर्म्म अधर्म्म, सत्य अथवा मिथ्या—जिसका जो गुण परमेश्वर ने प्रथम रचना के समय नियत किया, पीछे से वे ही गुण उस देहधारी प्राणी में अपने आप उत्पन्न होने लगे।

पृथिवी आदि लोकों की बढ़ती के लिये, परमात्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्री, उरु से वैश्य और पैर से शूद्र की रचना की। उस प्रभु ने अपने शरीर को दो भागों में बाँट कर, आधे से पुरुष और आधे से स्त्री उत्पन्न की। फिर उस स्त्री की कोख से विराट को उत्पन्न किया। उस विराट नाम के पुरुष

*आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी।

ने तपस्या की। तपस्या कर के जो पुरुष उत्पन्न किया, उसका नाम मनु पड़ा। उन्हीं मनु की कही हुई यह स्मृति है।

मनु ने पहिले दस महर्षि प्रजापति बनाये। उनके नाम हैं— मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। इन दस महर्षियों ने महातेजस्वी सात मनुओं की सृष्टि की और जिनकी रचना ब्रह्मा ने नहीं की थी, उनकी रचना इन्होंने की। महर्षि, राक्षस, यक्ष, किन्नर, पिशाच, गन्धर्व अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, गरुड़, पितर, बिजली, वज्र, बादल, इन्द्रधनुष, धूमकेतु, ध्रुव, वानर, मछली, सिंह आदि अनेक प्रकार के पशुपक्षी, वृक्ष, लता आदि उत्पन्न किये।

जीवधारियों का, सृष्टि के अन्त में, जैसा कर्म था, उनकी उसीके अनुसार, दूसरी सृष्टि के आदि में, रचना की गयी।

जीवधारी प्राणियों की सृष्टि तीन प्रकार की है। यथा, १ जरायुज-जो गर्भ से उत्पन्न होते हैं। २ अण्डज—जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं। ३ स्वेदज—जो पसीने से पैदा होते हैं। ४ उद्भिद्—जो पृथिवी को फोड़ कर निकलते हैं। हिरन, शेर, कुत्ता, बिल्ली, दो पांव-वाले, दान्त-वाले प्राणी, राक्षस, पिशाच, और मनुष्य जरायुज कहलाते हैं। पक्षी, सर्प, घड़ियाल, मछलियाँ, कछुए, मेंढक, नेवला आदि अण्डज कहलाते हैं। मच्छर, मक्खी, जूँ, खटमल, पतङ्ग आदि स्वेदज कहे जाते है। वृक्ष आदि उद्भिद् कहलाते हैं।

उद्भिद् भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो बीज से पैदा होते हैं। दूसरे वे जो शाखा लगाने से उत्पन्न होते हैं। जिनमें फल और फूल लगते हैं और जिनके फल पक जाते हैं, उन्हें "औषध" कहते हैं। जो बिना फूले ही फलते हैं, उन्हें

"वनस्पति" कहते हैं। जिनमें केवल फूल ही हों अथवा केवल फल ही लगते हों—ऐसे वृक्षों को भी "वनस्पति" कहते हैं।

गुच्छ व लता अनेक प्रकार की हैं। इनमें कोई बीज से और कोई शाखा से उत्पन्न होती हैं।

ये सब भी अनेक भाँति के असत्कर्मों से जकड़े हुए हैं और इनमें चेतन शक्ति भी मौजूद है। आदमियों की तरह इनको भी सुख दुःख मालूम होते हैं।

२—काल-विभाग

अट्ठारह निमेष की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओं की एक कला; तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त, और तीस मुहूर्त्तों का एक दिन रात होता है। सूर्य्य—मनुष्य और देवताओं के दिन रात का विभाग किया करता है। रात प्राणियों के सोने के लिये और दिन काम करने के लिये बनाया गया है।

मनुष्यों का एक महीना पितरों का एक दिन रात होता है। उजेले* पाख का दिन अंधेरे† पाख की रात होती है। उजेले पाख में पितर लोग काम करते हैं और अंधेरे पाख में सोते हैं।

मनुष्यों के एक वर्ष में देवताओं का एक दिन रात होता है। मनुष्यों के छः महीने को उत्तरायण‡ और दूसरे छः महीनों को दक्षिणायन§ कहते हैं। उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात है।

---

* शुक्लपक्ष। † कृष्ण पक्ष। ‡ जब से दिन बढ़ने लगता है तब से "उत्तरायण" आरम्भ होता है। § जब से दिन घटने लगता है तब से "दक्षिणायन" आरम्भ होता है।

मनुष्यों के ३६० वर्षों का एक "दैव-वर्ष" होता है। दैव-वर्ष से चार हज़ार वर्षों का सत्ययुग होता है। उस युग के पहिले चार सौ वर्ष की सन्ध्या और अन्त में चार सौ वर्षों का सन्ध्याँश होता है। तीन हज़ार दैव-वर्षों का त्रेता-युग और उसकी तीन सौ वर्ष की सन्ध्या और तीन सौ वर्ष का सन्ध्याँश होता है। दो हज़ार दैव-वर्षों का द्वापर होता है और द्वापर की सन्ध्या और उसके सन्ध्याँश में दो दो सौ दैव-वर्ष होते हैं। कलियुग में एक हज़ार दैव-वर्ष होते हैं और एक सौ दैव-वर्षों की सन्ध्या और एक ही सौ दैव वर्षों का सन्ध्याँश होता है।

दैव-वर्षों के हिसाब से बारह हज़ार वर्ष मनुष्यों के चतुर्युगों में देवताओं का एक युग होता है। देवताओं के एक हज़ार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इसी हिसाब से उनकी एक रात होती है।

पहिले जो दैव-युग का हिसाब बतलाया गया है, उसीके हिसाब से इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर कहलाता है।

३—कर्म्म—विभाग

युगों के बदलने पर धर्म्म भी घटता बढ़ता रहता है। सत्य-युग में तपस्या ही मुख्य धर्म्म माना गया है, त्रेता में ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। द्वापर में यज्ञ और कलियुग में केवल दान ही धर्म्म है।

परमात्मा ने जैसे अपने शरीर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; चार वर्ण बनाये—वैसे ही चारों वर्णों के कर्म्म भी अलग अलग बना दिये।

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना—ये छः कर्म्म ब्राह्मणों के करने के हैं।

प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, और भोगों में आशक्त न होना—ये क्षत्रियों के कर्म्म हैं।

पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार को बढ़ाने के लिये धन लगाना, और खेतीबारी करना—वैश्यों के कर्म्म हैं।

छल छिद्र छोड़ कर, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना, शूद्रों का प्रधान कर्म्म है।

४—ब्राह्मणों की श्रेष्ठता

पुरुष के पाँव का ऊपरी भाग पवित्र है। फिर उसके बाद नाभि का ऊपरी भाग पवित्र है, उससे भी मुख श्रेष्ठ है।

ब्रह्मा के पवित्र मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए। वे सब वर्णों के पहिले जन्मे और वेदों को सब से प्रथम पढ़ने से—वे सारी सृष्टि के धर्म्म का अनुशासन करने वाले हुए।

देवताओं और पितरों को हव्य कव्य मिले और उससे सब संसार की रक्षा हो—इसीलिये ब्रह्मा ने तपस्या कर के, पहिले अपने मुख से ब्राह्मण उत्पन्न किये।

स्वर्ग में रहने वाले देवता जिनके मुख से हवन की वस्तुओं को सदा भोजन किया करते हैं; श्राद्धादि में जिन्हें अन्न आदि भोजन करने से पितृ गण सन्तुष्ट होते हैं—उन ब्राह्मणों से बढ़ कर, इस पृथिवी पर कौन हो सकता है?

उत्पन्न हुए पदार्थों में, जिनके प्राण हैं, वे श्रेष्ठ हैं। प्राणवालों में वे श्रेष्ठ हैं, जो बुद्धि वाले हैं। बुद्धि वालों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मणों में विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। विद्वानों में शास्त्रों की रीति के अनुसार कार्य्य करने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और कर्त्तव्य कर्म्म करने वालों में ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है।

तीनों लोकों के बीच सब धन ब्राह्मणों ही का है। ब्राह्मण जो खाते, पहिनते और दान करते हैं-वह पराया होने पर भी उनका ही है। क्योंकि ब्राह्मणों ही की कृपा से अन्य लोग भोजन पानादि से जीवित हैं।

५—आचार महिमा

आचार का पालन करना परम धर्म्म है। इसलिये आत्म-ज्ञानी ब्राह्मण सदा ही आचार का पालन करे। आचार भ्रष्ट होने से ब्राह्मण वेद का फल भागी नहीं हो सकता।

मुनियों ने आचार से धर्म्म की प्राप्ति देख कर और आचार को समस्त तपस्या का मूल कारण जान कर और आचार को कल्याणकारी समझ कर, धारण किया है।
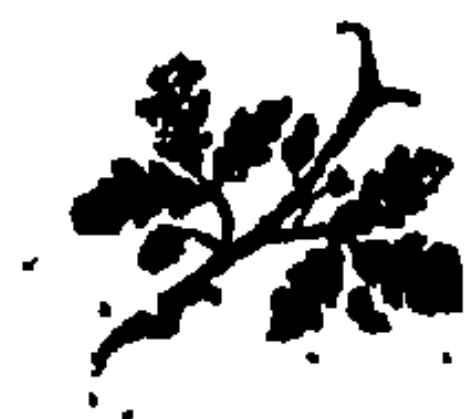
दूसरा अध्याय

१—देश निरूपण

सरस्वती और दृषद्वती नाम की नदियों के बीच वाले देश को पण्डित लोग "ब्रह्मावर्त्त" कहते हैं। इस देश में बसने वाले चारों वर्ण और सङ्कर जातियों में जो आचार परम्परा से चले आते हैं—उसे ही सदाचार कहते हैं।

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, कान्य कुब्ज, और मथुरा को "ब्रह्मर्षि" देश कहते हैं। ब्रह्मर्षि देश, ब्रह्मावर्त्त देश से घट कर है।

"ब्रह्मावर्त्त" और "ब्रह्मर्षि" देशों में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों से पृथ्वी के सब लोगों को अपना अपना आचार सीखना चाहिये।

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल के बीच का स्थान; विनशन देश के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम, में, जो देश हैं; पण्डित लोग उसे "आर्य्यावर्त्त" कहते हैं।

जिस देश में काले हिरन विचरते हैं—उसे "यज्ञीय" देश कहते हैं।

इन देशों को छोड़ कर, अन्य देशों को पण्डित लोग "म्लेच्छ" देश कहते हैं।

यत्न पूर्वक अच्छे देशों में रहना द्विजातियों* का कर्त्तव्य है, पर जीविका के लिये वे चाहे जिस देश में जा कर, रह सकते हैं।

२—वर्ण-धर्म्म-निरूपण

द्विजातियों के संस्कार वैदिक-विधि से करना चाहिये। ये वैदिक कर्म्म इस जन्म और पर जन्म में पवित्र करने वाले हैं।

गर्भ समय में गर्भाधान आदि संस्कार, जातकर्म्म, चूड़ाकरण, और उपनयनादि संस्कारों से द्विजातियों के गर्भ जनित पाप नाश होते हैं।

तीनों वेदों का पढ़ना, ब्रह्मचर्य्य व्रत, सन्ध्या सवेरे होम, ब्रह्मचर्य्य के समय देव ऋषियों का तर्पण, गृहस्थ हो कर सन्तान उत्पन्न करना, ब्रह्मयज्ञादि यज्ञों का करना—ये सब कर्म्म मनुष्य की देह को पवित्र कर, ईश्वर के मिलने के योग्य बनाते हैं।

३—संस्कार

१-बालक जन्मते ही, पहिले उसका नाड़ा काट कर, जातकर्म्म नाम संस्कार करना उचित है। उस समय अपने अपने गृह्य सूत्रों से बालक के मुख में शहद और घी छोड़ना चाहिये।

२-जन्मे हुए बालक का नामकरण संस्कार दसवें, बारहवें वा उसके बाद जिस दिन, ज्योतिषी पण्डित नक्षत्र, लग्न आदि शुभ बतलावे, करना चाहिये।

---

*ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को द्विजाति कहते हैं।

ब्राह्मण का मङ्गल वाचक, क्षत्रिय का बलवाची, वैश्य का धन-वाची और शूद्र का हीनता वाचक नाम रखना चाहिये।

ब्राह्मण के नाम के अन्त में "शर्म्म"; क्षत्रिय के "वर्म्म" आदि कोई-रक्षावाचक उपपद, वैश्य के नाम में "गुप्त" और शूद्र के नाम के पीछे "दास" लगाना चाहिये* ।

स्त्रियों के नाम ऐसे हों, जिन्हें उच्चारण करने में कष्ट न हो, अर्थ साफ़ साफ़ मालूम हो जाय, जो मनोहर हों, जो मङ्गल वाचक हों, जिनके अन्त में दीर्घ स्वर हो और जिनके पुकारने में आशीर्वाद का बोध हो।

३–चौथे महीने में सूर्य्य का दर्शन कराने के लिये जन्मे हुए बालक को बाहर निकालना चाहिये।

४–छठें महीने में अन्न-प्राशन (जूठा) संस्कार करना चाहिये।

५–वेद-विधि के पहिले वा तीसरे वर्ष में कुलाचार के अनुसार द्विजातियों का चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार करना चाहिये।

६–ब्राह्मण का आठवें; क्षत्रिय का ग्यारहवें और वैश्य का बारहवें वर्ष में, यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार करना उचित है।

ब्रह्मतेज की कामना रखने वाले ब्राह्मण का पाँचवें, बल की इच्छा वाले क्षत्रिय का छठवें और धनशाली वैश्य का आठवें वर्ष में जनेऊ कर देना चाहिये।

ब्राह्मण का सोलहवें वर्ष तक, क्षत्रिय का बीस वर्ष तक और वैश्य का चौबीस वर्ष तक जनेऊ हो सकता है।

---

*जो लोग केवल कर्म्म ही से वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, उनके लिये नाम-संस्कार बड़े अड़चन का संस्कार है। क्योंकि दस बारह दिन का बालक आगे चल कर, किस वर्ण के काम करेगा—यह जान लेना सर्वथा असम्भव है। इसलिये जन्म से वर्ण-व्यवस्था माननी पड़ेगी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का यदि इतने समय तक उपनयन संस्कार न किया जाय तो वे भ्रष्ट हो जाते हैं और वे व्रात्य कहलाते हैं।

उपनयन संस्कार से हीन, प्रायश्चित्त-रहित व्रात्यों के साथ ब्राह्मण आपत्ति पड़ने पर भी किसी तरह का सम्बन्ध न रखे।

४—ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य कर्म्म

ब्राह्मण ब्रह्मचारी के पहिनने के लिये सन के कपड़े और ओढ़ने को काले हिरन का चमड़ा; क्षत्रिय ब्रह्मचारी के पहिनने के लिये मेढ़े के रोएँ के बने ऊनी कपड़े और ओढ़ने को बकरे का चमड़ा होना चाहिये।

ब्राह्मण की मेखला (करधनी) नीचे की ओर हो, ऊंची न रहे, कोमल हो, तिहरी मूंज की बनावे। क्षत्रिय की मुर्व्वामयी* धनुष के रोदे की तरह और वैश्य की सन की बनी हुई, तिगुनी करधनी होनी चाहिये।

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत (जनेऊ) कपास के सूत का, क्षत्रिय का सन के सूत का, और वैश्य का मेढ़े के रोम के सूत का—बनाना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ब्रह्मचारियों को क्रम से, बेल अथवा पलाश, बट व खदिर और पीलू अथवा उदुम्बर का दण्ड रखना चाहिये।

उपनीति ब्रह्मचारी ब्राह्मण पहिले "भवत्" शब्द कह के भीख माँगे। ब्रह्मचारी पहिले माँ बहिन तथा उन स्त्रियों से भिक्षा माँगे, जो उसे छूँछा न लौटा दें।

*एक प्रकार की लता होती है।

ब्रह्मचारी भिक्षा ला कर, गुरु के सामने रखे और गुरु से आज्ञा ले पूर्व मुख बैठ भोजन करे।

आयु की इच्छा वाले पूर्व मुख, यश चाहने वाले दक्षिण मुख, धन चाहने वाले पश्चिम मुख, और सत्य की इच्छा रखने वाले उत्तर मुख बैठ कर, भोजन करें।

द्विजाति हाथ पाँव और मुख धो कर, प्रसन्न चित्त हो, भोजन करें। भोजन कर चुकने पर, फिर हाथ पैर मुख धोवें।

अपना जूठा अन्न किसी को न देना चाहिये और न जूठे मुँह कहीं जाना चाहिये। भोजन धीरे धीरे करना चाहिये। अधिक भोजन न करे।

सातवाँ संस्कार केशान्त (मूंडन) संस्कार है। ब्राह्मण का सोलहवें क्षत्रिय का बाइसवें और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में केशान्त संस्कार करना चाहिये।

स्त्रियों की देह-शुद्धि के लिये उपनयन को छोड़ सभी संस्कार यथा समय करने चाहिये। पर स्त्रियों के संस्कार अमंत्रक होने चाहिये। विवाह-संस्कार ही स्त्रियों का वैदिक उपनयन संस्कार है।

शिष्य का उपनयन संस्कार करा कर, गुरु को चाहिये कि शिष्य को पहिले शुद्धि, आचार, प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्यावन्दन और हवन करने की विधि सिखावे।

शिष्य को चाहिये कि पढ़ना आरम्भ करते समय और समाप्त करते समय गुरु के पाँव छुए। गुरु के चरण दोनों हाथों से छुए। दहिने हाथ से दहिने पैर को और बायें हाथ से बायें पैर को छूना चाहिये।

५—गायत्री जप माहात्म्य

जो द्विज प्रणव अर्थात् "ओं" या व्याहृतियुक्त (भूर्भुवः स्वः) गायत्री को—दोनों सन्ध्या में जपता है—उसे वेद के सारे पुण्य मिलते हैं। जो द्विज सन्ध्या के सिवाय अन्य समय भी प्रतिदिन प्रणव, व्याहृति और गायत्री एक हज़ार बार जपता है, वह बड़े पापों से इस तरह छूट जाता है, जैसे साँप केंचुली से। त्रिपदा गायत्री ही ब्रह्म से मिलने का एक मात्र उपाय है।

जो आलस छोड़ कर, तीन वर्ष तक नित्य प्रणव और व्याहृति सहित गायत्री जपता है, वह परब्रह्म को पाता है। गायत्री से बढ़ कर और मंत्र नहीं है।

६—एकादश इन्द्रिय वर्णन

१ २ ३ ४ ५ १ २ ३ ४
कान, आँख, नाक, जीभ, खाल ; गुदा, मुत्रेन्द्रिय, हाथ, पैर
५
और वाणी—इनको दस इन्द्रिय कहते हैं। इनमें पहिली पाँच "ज्ञानेन्द्रि" और पिछली पाँच इन्द्रियों को "कर्म्मेन्द्रिय" कहते हैं।

ये दशों इन्द्रियाँ ग्यारहवीं इन्द्रिय मन के हाथ में हैं। मन को वश में करने ही से मनुष्य "जितेन्द्रिय" कहलाने लगता है।

७—सन्ध्या-विधान

सबेरे की सन्ध्या कर के, सूर्य्य निकलने तक एक स्थान में खड़ा रह कर के, गायत्री जप करे और सन्ध्या के समय तारागण निकलने तक आसन पर बैठ कर जप करे।

प्रातःकाल खड़े हो कर, जप करने से रात्रि के किये हुए पाप नष्ट होते हैं और सायंकाल के समय बैठ कर, जप करने से दिन के किये हुए पाप छूट जाते हैं।

परन्तु जो द्विज सवेरे और सन्ध्या समय जप आदि नहीं करता, उसे शूद्र की तरह जाति से बाहर निकाल देना चाहिये।

जो पुरुष शुद्ध भाव से, इन्द्रियों को जीत कर, विधि-पूर्वक एक वर्ष तक जप करता है, उसे दूध, दही, घी और शहद का टोटा नहीं रहता। सदाचार युक्त ब्राह्मण यदि पूरा शास्त्रज्ञ न हो कर, केवल गायत्री मात्र जपे-तो भी वह माननीय है। परन्तु तीनों वेदों का जानने वाला भी अगर दुराचारी, कुधान्य खाने वाला और निषिद्ध वस्तुओं का बेचने वाला हो, तो वह मानने योग्य नहीं है।

८—विद्यादान के पात्र।

गुरु का पुत्र[१], सेवा टहल करने वाला[२], ज्ञानी[३], धार्म्मिक[४], शुचि[५], अपना सम्बन्धी[६], पढ़ाने के योग्य[७], धनदाता[८], साधु[९] और पुत्र[१०] —ये दस धर्म्म से पढ़ाये जाने के योग्य हैं।

जीवन निर्वाह का अन्य उपाय न रहने पर भी, अध्यापक विद्या सहित मर जाय, पर कुपात्र को विद्या न पढ़ावे।

९—सदाचार

बिना पूँछे बात न करनी चाहिये और जो नियम-विरुद्ध प्रश्न करे-उसे उत्तर भी न देना चाहिये। बुद्धिमान अगर कहीं बेहूदों में जा फँसे, तो वह अनजान सा बन जाय।

जब शिष्य पढ़ना आरम्भ करे, तब गुरु उसे "अरे अब पाठ आरम्भ करो"—कह के पढ़ावे। इसी तरह पाठ समाप्त होने पर गुरु कहे-"इस स्थान पर आज पाठ रहा।

वेद पढ़ने के आरम्भ और अन्त में ब्राह्मण "ओं" का उच्चारण करे। यदि आरम्भ में प्रणव न कहा जाय तो पढ़ा हुआ नष्ट हो जाता है और अन्त में न कहने से सब पढ़ना भूल जाता है।

विद्या और अवस्था में बड़े लोगों की शय्या* व उनके बैठने के आसन पर, कभी न बैठना चाहिये। अपने से विद्या तथा अवस्था में बड़ों के आने पर उठ कर, उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

जो मनुष्य सदा बड़ों की सेवा करता और उनको नमस्कार करता है-उसकी आयु, विद्या, यश और बल की बढ़ती होती है।

श्रेष्ठ लोगों को प्रणाम करते समय कहे—" मैं अमुक आपको प्रणाम करता हूँ" प्रणाम करने के बाद जो कुछ कहना हो कहना चाहिये†। प्रणाम करने पर ब्राह्मण कहे-"अमुक आयुष्मान् हो"। जो ब्राह्मण आशीर्वाद देना नहीं जानता, विद्वानों को चाहिये उसे प्रणाम न करे। उसे शूद्र समान मानें।

भेंट होने पर प्रणाम के बाद छोटे व बराबर अवस्था वाले ब्राह्मण का कुशल, क्षत्रिय का मङ्गल, वैश्य का क्षेम और शूद्र की आरोग्यता के समाचार पूँछना चाहिये।

---

* खाट, चारपाई।

† स्मृति के अनुसार प्रणाम करने की यही शास्त्रोक्त विधि है। "नमस्ते महाशय !" अथवा "जै राम जी की" या "जै श्री कृष्ण की"—ये सब आधुनिक प्रथाएँ हैं ? इन प्रथाओं से प्रणाम करने वाले में और जिसको प्रणाम किया जाता है, उसमें, छुटाई बड़ाई का अन्तर मिट जाता है। छुटाई बड़ाई का भेद मिट जाने ही से समाज-विप्लव उपस्थित होता है।

पर स्त्री अथवा जिन स्त्रियों के साथ रक्त सम्बन्ध नहीं है —उन्हें "भवात" "सुभगे" अथवा "भगिनी" कह कर पुकारना चाहिये। मामा, चाचा, ससुर, पुरोहित, अथवा अन्य कोई गुरुजन यदि अपने से अवस्था में छोटे भी हों, तौभी उनके आने पर, उठ कर कहे—"अमुक हूँ।" मौसी, मामी, फूफी, और सास–इन्हें गुरुआनी की भाँति, पाँव छू कर प्रणाम करे। अवस्था में बड़ी भौजाई के पाँव छू कर, नित्य प्रणाम करना चाहिये और विदेश से लौटने पर माता, सास आदि के पाँव छूने चाहिये।

ब्राह्मण यदि दस वर्ष का हो और क्षत्रिय सौ वर्ष का हो—तो भी उन दोनों के बीच, पिता पुत्र जैसा व्यवहार होना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मण को क्षत्रिय अपना पिता समझ कर; उसका सम्मान करे।

रथ, बोझ ढोने वाले, स्त्रियाँ, गुरु के घर से लौटे हुए ब्राह्मण, राजा, दूल्हा—इन सब के जाने के लिये मार्ग छोड़ कर हट जाना चाहिये।

१०—परिभाषा प्रकरण

जो ब्राह्मण जीविका के लिये वेद का एक अंश अथवा वेदाङ्ग पढ़ाते हैं, उन्हें "उपाध्याय" कहते हैं और जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत करा कर, शिष्य को सम्पूर्ण वेद पढ़ाता है उसे "आचार्य्य" कहते हैं। जो नामकरण आदि संस्कारों को कराता है अथवा जो ब्राह्मण अन्न दान से पाले, उसे "गुरु" कहते हैं। जो विधिपूर्वक यज्ञ कराता है, उसे "ऋत्विक्" कहते हैं जो ब्राह्मण

सत्यरूपी वेद मंत्रों से दोनों कान पवित्र करते हैं, यथार्थ में वे ही माता पिता हैं। उनसे कभी द्रोह न करना चाहिये।

दस उपाध्यायों से एक आचार्य्य का गौरव अधिक है; एक सौ आचार्य्यों से संस्कारादि करने वाले पिता का गौरव अधिक है और जन्म-दाता हज़ार पिताओं से भी माता का पद बड़ा है।

जो वेद पढ़ कर, सचमुच ब्राह्मण बनते हैं—वे ही ब्राह्मण हैं। ऐसा ब्राह्मण बालक होने पर भी धर्म्म से वृद्धों के लिये भी पिता की तरह माननीय है। अङ्गिरा के पुत्र बालक होने पर भी पूर्ण विद्वान थे। इसी से वे अपने पिता तथा अपने से अवस्था में बड़े बूढ़ों को पढ़ाते थे। उन्होंने उन्हें शिष्य मान कर, "पुत्रक" शब्द से पुकारा था। अपने से अवस्था में छोटों द्वारा, अपने को पुत्र कह कर, पुकारे जाने पर, वे क्रुद्ध हुए थे और देवताओं से "पुत्रक" का अर्थ पूँछा था। इस पर देवताओं ने सहमत हो कर, कहा था कि बालक ने जो कहा है वह अनुचित नहीं है। क्योंकि अनजान लोग बूढ़े होने पर भी बालक ही हैं और ज्ञान का उपदेश देने वाला बालक भी, पिता के समान पूज्य है।

ऋषियों का मत है कि अवस्था में बड़ा; बड़ा नहीं है। सफेद बाल होने से भी बड़प्पन नहीं होता और न अधिक धन होने ही से बड़प्पन समझा जाता है। नाते में बड़े होने से भी बड़ाई नहीं होती। बड़ा वही है जो वेद का जानने वाला है और जो इसके बतलाये हुए मार्ग पर चलता है।

ज्ञानवान् होने से ब्राह्मण, बलवान होने से क्षत्रिय, धन धान्य युक्त होने से वैश्य, और अवस्था में बड़ा होने से शूद्र, बड़ा समझा जाता है।

सिर के बाल-पकने से आदमी बूढ़ा नहीं कहलाता। परन्तु जो लोग युवा हो कर भी विद्वान होते हैं, देवता लोग उन्हें ही बड़ा बूढ़ा समझते हैं।

जैसे काठ के बने हाथी और चमड़े के नक़ली हिरन होते हैं, वैसे ही वेद-हीन ब्राह्मण हैं।

११—शिष्य के कर्त्तव्य

शिष्य को चाहिये कि गुरु की शय्या और उनके आसन से अपना आसन सदा नीचा रखे। गुरु के सामने शिष्य को हाथ पैर फैला कर, न बैठना चाहिये। शिष्य को गुरु का न तो नाम लेना चाहिये और न उनके बोलने अथवा चलने आदि का अनुकरण (नक़ल) करना चाहिये। जहाँ गुरु की निन्दा होती हो, वहाँ शिष्य को न बैठना चाहिये। गुरु की बुराई और निन्दा करने से शिष्य को गधे और कुत्ते की योनि मिलती है।

बैल, घोड़े और ऊँट की सवारी पर, घर की छत पर, चटाई पर और लकड़ी पत्थर की चौकी पर और नाव पर, गुरु के पास शिष्य बैठ सकता है।

सूर्य्य के उदय होने पर, यदि ब्रह्मचारी सोता रहै, या अनजाने सोते रहते सूर्य्य अस्त हो जाय, तो उसे एक दिन उपवास करके गायत्री का जप करना चाहिये।

विद्या-दाता- आचार्य्य साक्षात् ब्रह्म की मूर्त्ति है, जन्म-दाता पिता ब्रह्म और गर्भ-धारिणी माता साक्षात् पृथिवी की मूर्त्ति हैं इसलिये इनसे दुःख मिलने पर भी—कभी इनकी अवमानना न करनी चाहिये।

सन्तान के जन्म समय में और उसके पालन पोषण में माता पिता जो क्लेश सहते हैं पुत्र एक सौ वर्ष में भी उसका पलटा नहीं चुका सकता।

जो माता पिता और गुरु का आदर करता है—उसे सब धर्म्मों के पालन का फल मिल जाता है और जो इन तीनों का अनादर करता है, उसके सब धर्म्म कर्म्म व्यर्थ होते हैं। इसलिये इन तीनों की मन लगाकर सेवा करनी चाहिये। शिष्य का परम धर्म्म यही है कि वह माता पिता और गुरु की सेवा करे और धर्म्म चाहे उससे सधे या न सधे—कुछ चिन्ता नहीं, पर माता पिता और गुरु की सेवा में कभी कमी न होनी चाहिये।

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म्म पवित्रता, हितवाक्य और शिल्प-कला आदि अपने से हीन वर्ण वाले से भी ले लेने में हानि नहीं है।

शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह खेत, सोना, गौ, घोड़े, छत्र, जूता, आसन, धान्य, शाक और वस्त्रादि भेंट कर के, गुरु को सदा प्रसन्न रखे।

तीसरा अध्याय

१—गृहस्थाश्रम

ब्रह्मचारी को चाहिये कि गुरु-गृह में छत्तीस अट्ठारह, या नौ वर्ष तक रह कर, या जितने दिनों में तीनों वेदों का सारा अर्थ जान सके, उतने दिनों लों गुरु-गृह में रहे।

इस तरह जब वेदों का पूरा ज्ञान हो जाय, तब ब्रह्मचारी गृहस्थ-आश्रम में आवे और गुरु की आज्ञा ले कर, अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह करे।

२—विवाह योग्य कुल और कन्या

जातिकर्म्मादि-संस्कारों रहित, या जिस कुल में सदा कन्या ही उत्पन्न हुई हों, या जिस कुल के लोग वेद न पढ़ते हों, या जिस कुल में कोई राजयक्ष्मा, मिरगी, कोढ़ आदि महारोगों से पीड़ित हो—ऐसे कुलों की कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये।

जिस कन्या के छः अङ्गुली हों, जो सदा बीमार रहती हो,

जिसके शरीर पर रोएँ बिल्कुल न हों, या जिसके बहुत रोएँ हों, जो बहुत बकबक करती हो और जिसकी आँखें पीली हों, ऐसी कन्या के साथ कभी विवाह न करे।

नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी और सर्प नाम वाली, या जिसके नाम के पीछे दासी लगा हो-या जिसका नाम भयानक हो-ऐसी कन्या के साथ विवाह न करे।

३—विवाहों के नाम

विवाह आठ प्रकार के होते हैं। उनके नाम ये हैं १-ब्राह्म, २-दैव, ३-आर्ष, ४-प्राजापत्य, ५-आसुर, ६-गान्धर्व, ७-राक्षस, और ८-पैशाच। ब्राह्मण के लिये ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य-ये चार प्रकार ही के विवाह उत्तम हैं। राक्षस विवाह सब विवाहों से बुरा है।

धन के लालच में पड़ कर, जो माता या पिता अपनी कन्या बेचता है-उसे गौ मारे का पाप लगता है।

अधिक भलाई के चाहने वाले पिता, माता, पति और देवर को चाहिये कि स्त्रियों को, खाने पीने और गहने कपड़े की कभी तङ्गी न होने दें।

जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार होता, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं और जिस कुल में स्त्रियों को शोक, सन्ताप होता है; वहाँ सब किये हुए अच्छे काम निष्फल होते हैं। जिस घर में स्त्रियाँ दुःख पाती हैं उस घर का तुरन्त नाश होता है। जिस घर में स्त्रियाँ सुखी रहती हैं, उस घर की सदा बढ़ती होती है।

४—पंचमहायज्ञ

गृहस्थों के घरों में पाँच जगह नित्य जीव-हिंसा हुआ करती है। अर्थात् चूल्हा, चक्की, उखली, जल के कलसों से और बुहारी से अनेक छोटे छोटे कीड़े मरते हैं। हिंसा करना बड़ा पाप है। इससे छुटकारा पाने के लिये महर्षियों ने पाँच महायज्ञ करने की आज्ञा दी है।

वे पाँच यज्ञ ये हैं—१ ब्रह्म-यज्ञ (अर्थात् पढ़ना पढ़ाना) २ पितृ-यज्ञ (अन्न जल आदि से पितरों का श्राद्ध तर्पण करना) ३ देव-यज्ञ (अर्थात् होम आदि करना) ४ भूत यज्ञ (अर्थात् पशु पक्षियों को अन्न जल देना) और ५ मनुष्य-यज्ञ (अर्थात् अतिथियों की सेवा करना)।

जो गृहस्थ इन पाँचों यज्ञों को नहीं करता, वह जीता हुआ भी मरे के बराबर है।

गुरु को विधि पूर्वक गोदान करने से ब्रह्मचारी को जो पुण्य होता है, गृहस्थों को, भिखारी को भीख देने से वही फल मिलता है।

दान किसी वस्तु का क्यों न हो—वेदाध्ययन अथवा ज्ञानादि कर्म्मों से रहित निस्तेज ब्राह्मण को कभी न देना चाहिये।

५—अतिथि सत्कार

गृहस्थ को चाहिये कि घर पर आये हुए अतिथि का सत्कार करे। गृहस्थ चाहे कैसे कर्म्म धर्म्म से रहता हो; पर यदि उसके घर पर आया हुआ अतिथि ब्राह्मण, विमुख (खाली)

लचा जाय और उसका यथा-विधि आदर सत्कार न हो, तो वह उस गृहस्थ के सारे पुण्यों को हर कर चला जाता है।

अत्यन्त धन-हीन होने पर भी सोने के लिये चटाई, बैठने को जगह, पाँव धोने के लिये जल और मीठी बातों से, घर पर आये हुए अतिथि का सज्जन सत्कार करते हैं।

पराये अन्न के खाने से जो पाप लगता है—उसे न जान कर —जो अतिथि-सत्कार पाने के लोभ में फँस कर, गाँवों गाँवों घूमता फिरता है ; वह मर कर, अगले जन्म में अन्न-दाता का पशु होता है।

ब्राह्मण के घर पर आये हुए, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र अतिथि नहीं कहलाते और न भाई बन्धु और गुरु अतिथि कहलाते हैं।

नवीन विवाहिता स्त्री, पतोहू, लड़की, बालक, रोगी और गर्भवती स्त्री को अतिथि के पहिले भोजन करा देने चाहिये। जो मूर्ख इन्हें बिना खिलाये पहिले स्वयं भोजन कर लेता है, मरने पर उसके शरीर को सियार और कुत्ते खाते हैं।

६—पितृ-श्राद्ध

अधिक से अधिक देव कार्य में दो और पितृ कार्य्य में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

प्रति अमावस को पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। जो सदैव अमावश को पितरों का श्राद्ध करते हैं—इन्हें सदा धन धान्य आदि सम्पत्तियाँ मिला करती हैं।

देव और पितृ कर्म्मों में वेद जानने वाले एक ही ब्राह्मण को भोजन कराना अच्छा है क्योंकि वेद न जानने वाले सौ ब्राह्मणों को भोजन कराने से कुछ भी फल नहीं होता।

स्नान के बाद जब द्विजाति, पितरों का तर्पण करते हैं तब वे उसी से पितृ-यज्ञ का पूरा फल पाते हैं।

चौथा अध्याय

—*—

१—जीविका

द्विजों को चाहिये कि अपनी आयु के चार हिस्से करें। अर्थात् यदि मनुष्य की १०० वर्ष की आयु मानी जाय तो पच्चीस पच्चीस वर्ष के चार हिस्से करें पहिले पचीस वर्षों में गुरु के घर में रह कर विद्या पढ़ें। दूसरे हिस्से में विवाह कर के गृहस्थी करें।

गृहस्थ को चाहिये कि वह अपना जीवन इस तरह बितावे कि उससे प्राणी मात्र को सुख मिले।

गृहस्थ को धनवान होने की आशा और प्रयत्न कभी न करना चाहिये। गृहस्थी का काम न रुके और शरीर को बहुत कष्ट न मिले-यह सोच कर ही आमदनी का द्वार ढूढ़ना चाहिये।

ऋत* और अमृत† मृत‡ और प्रमृत§ से;

---

*पृथिवी में पड़े हुए दानों को बीन कर लाने को "ऋत" कहते हैं।

†बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसे "अमृत" वृत्ति कहते हैं।

‡भीख माँगना "मृत" वृत्ति कहलाती है।

§खेतीबारी करना "प्रमृत" वृत्ति कहलाती है।

सत्यानृत* से जीविका निभा ले, पर कुत्ते+ की वृत्ति से कभी शरीर को न पाले। अल्प-पराक्रमी गृहस्थों को जीविका के लिये, झूठ, ठगहारी, चापलूसी, अपनी प्रशंसा कर मालिक को प्रसन्न कर के अथवा बनावटी बातों से स्वामी को प्रसन्न कर के, जीविका न चलानी चाहिये। धन पैदा करने में सदा छल और कपट को छोड़ देना चाहिये।

सुख चाहने वाले को सदा सन्तोष रखना चाहिये। क्योंकि सन्तोष भी सुखका मूल है और तृष्णा ही अनीष्टों की जड़ है।

द्विजों को चाहिये कि निरालसी बन कर, अपने अपने वर्ण के अनुसार धर्म्म कर्म्म करें। अपनी शक्ति के अनुसार धर्म्म कर्म्म करने से द्विजों को परमगति (मोक्ष) मिलती है।

२ गृहस्थों के साधारण नियम

गृहस्थों को चाहिये की संसार में वर्त्ताव करते समय अपनी अवस्था, पासकी पूंजी, अपनी विद्या और अपने वंश की मर्य्यादा पर सदा ध्यान रखें।

उनको ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहियें, जिनसे उनकी बुद्धि बढ़े, धन कमाने की युक्तियाँ मालूम हों और जिनके पढ़ने से ज्ञान बढ़े।

प्रातःकाल और सायँकाल में नित्य हवन करना चाहिये और कृष्ण-पक्ष पूरा होने पर अमावस को "दर्श" और शुक्ल-पक्ष के अन्त में पूर्णिमा को "पौर्णमास" यज्ञ करे।

अपने वित्तानुसार अतिथि का सत्कार अवश्य करना

---

*व्यापार का नाम "सत्यानृत" है।

+नौकरी करना "श्ववृत्ति" अर्थात् "कुत्ता बन कर रहना" कहलाता है।

चाहिये। अगर अतिथ का आसन, जल भोजनादि से सत्कार न किया जाय तो फिर उस घर में कोई अतिथि नहीं जाता।

परन्तु वेद-विरुद्ध मार्ग पर चलने वाले बुरे काम करने वाले, मूर्ख, पाखण्डी, वेद विरुद्ध तर्क (दलील) करने वाले और बगुला भगतों का कभी वचन से भी सत्कार न करे।

जो लोग स्वयं रसोई नहीं बनाते—उन लोगों को गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार अन्न आदि दें। अपने घरवालों को क्लेश न हो, इसलिये उनके भोजन के योग्य अन्न छोड़ कर—बचा हुआ सब अन्न प्राणियों को बाँट दें।

उगते हुए और डूबते हुये सूर्य्य को कभी न देखे। ग्रहण पड़ने पर, जल में सूर्य्य की परछाई और जब सूर्य्य बीच आकाश में आवें, तब उन्हें न देखना चाहिये।

बछड़ा बाँधने की रस्सी को न लाँघे। जल बरसने के समय दौड़ कर न चले और जल में अपनी परछाईं न देखें।

मिट्टी का ढेर, गऊ, मन्दिर, ब्राह्मण, घी, शहद, चौराहा और बड़े बड़े पेड़ों को दहिनी ओर रख के चलना चाहिये।

एक कपड़ा पहिन कर, कभी न भोजन करे। रास्ते में, गौ-शाला में, राख के ऊपर, जुते हुए खेत में, पानी में, चिता पर, पहाड़ पर, पुराने देव मन्दिर में और साँप की बाँबी में पेशाब न करे और पाखाना न फिरे।

चलते चलते खड़े हो कर, नदी के किनारे, पहाड़ की चोटी पर भी मल-मूत्र न त्यागे। जिधर वायु वेग से चल रहा हो, उधर को मुँह कर के, जल आग, ब्राह्मण, सूर्य्य और गौओं को देखता हुआ मल-मूत्र न त्यागे।

काठ, लोहा, पत्ते, व तिनकों से ज़मीन ढक कर, कपड़ा ओढ़ कर, सिर नीचा कर के और चुपचाप बैठ कर, मल-मूत्र त्यागे।

सुबह शाम उत्तर की ओर, रात में दक्षिण की ओर मुख कर के मल मूत्र त्यागे।

छाया में, अँधेरे में, दिन में या रात में, प्राणों का भय होने पर, इच्छा पूर्वक जैसा उचित समझे—उस ओर मुँह कर के, मल मूत्र परित्याग करे।

अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, जल, ब्राह्मण, गौ और वायु के सामने बैठ कर, मल-मूत्र त्याग करने से बुद्धि बिगड़ती है।

अग्नि को मुँह से न फूँके। उसमें अपवित्र वस्तु न डाले। पैरों से न तापे। नङ्गी स्त्री को न देखे। सोते हुए लोगों की खाट के नीचे आग न रखे। आग को नाँघे भी नहीं और वैसा कोई काम न करे जिससे किसी को दुःख हो।

दोनों सन्ध्याओं के मिलने पर, (सुबह शाम) भोजन न करे। घूमे नहीं और उस समय सोवे नहीं। भूमि में लकीरें न खींचे। पहिनी हुई मालाको आप न उतारे। जल में हगे मूते नहीं और न उसमें थूके। मल मूत्र से सने कपड़े जल में अथवा नदी में डाल कर न धोवे। खून और विष भी पानी में न मिलावे।

सूने मकान में अकेला न सोवे, अपने से बड़ों को सोते हुए कभी न जगावे और बिना बुलाये किसी यज्ञ-स्थान में न जाय।

अग्नि-स्थान, गोशाला, ब्राह्मणों के समीप और वेद पढ़ने के समय अँगोछे से दहिना हाथ बाहर रखे।

गऊ के बच्चे को जल वा दूध पीते न रोके अथवा उसको जल वा दूध पीते हुए देख कर, किसीसे न कहे। आकाश में इन्द्र-धनुष देख कर, किसी को न दिखावे।

जिस गाँव में अधिक विधर्म्मी व बीमार रहते हों—उस गाँव में न रहे। अकेला रास्ता न चले और बहुत दिनों तक पहाड़ पर न रहे।

शूद्र और अधर्म्मियों के देश में न बसे। जिन वस्तुओं की चिकनाई आदि सार भाग निकाल लिया गया हो-उन्हें न खाय।

जिसका कुछ फल न हो ऐसा व्यर्थ काम न करे। अञ्जली (चुल्लू) से पानी न पीवे। जाँघ पर रख कर, कोई वस्तु न खाय : बेमतलब बक बक न करे।

शास्त्र-विरुद्ध नाचना, गाना और बाजा बजाना छोड़ दे। ताली बजाना और दाँत कटकटाना मना है। आनन्द में फूल कर, गधे आदि की तरह न बोलना चाहिये।

काँसे के बर्तन से कभी पैर न धुलावे। फूटे बर्तन में कभी भोजन न करे और जिस बर्तन में खाने से जी बिगड़ता हो उस में भी न खाना चाहिये। दूसरों का पहिना जूता, कपड़ा, जनेऊ, गहना, माला और कमण्डल कभी न बर्त्ते।

क्रोधी, भूखे प्यासे, रोगी, टूटे सींगवाले, काँने, फटे टूटे खुर वाले और जिनके पूँछ न हो ऐसे हाथी घोड़े अथवा बैल की सवारी पर न सवार हो।

सीधे, तेज़ दौड़ने वाले, शुभ लक्षण वाले, और सुन्दर रङ्ग वाले, घोड़ों पर सवार होना चाहिये, पर उनको बार बार कोड़े न मारना चाहिये।

उगते हुए सूर्य्य की धूप और चिता के धुएँ से सदा बचना चाहिये। फटे आसन पर न बैठे। अपने आप नख और रुओं को न काटे और न दाँतों ही से नाखून काटे।

ढेले का तोड़ने वाला, नहों से तिनकों को काटने वाला, नहों को चवाने वाला और व्यर्थ काम करने वाला मनुष्य, तुरन्त नष्ट हो जाता है।

सौगन्द खा कर बात न कहे, गले की माला कपड़ों के ऊपर न पहिने और गौ की पीठ पर कभी सवार न हो।

छालदीवारी से घिरे गाँव में अथवा घर में दर्वाज़े को छोड़ कर, उसे नाँघ कर, कभी भीतर न जाय। रात में पेड़ तले न रहै और न रात में उसके नीचे हो कर निकले।

कभी जुआ न खेले। पहिना हुआ जूता हाथ में ले कर न चले। खाट पर बैठ कर न खाय। हथेली में अन्न रख कर, या आसन पर अन्न रख कर, न खाना चाहिये।

रात में केवल तिल का भोजन न करे। नङ्गा न सोवे। जूठे मुँह कहीं न जाना चाहिये।

पैर धोकर भोजन करे, पर गीले पैर सोवे नहीं। पैर धोकर भोजन करने से आयु बढ़ती है।

अनदेखे क़िले में न जाय। मल और मूत्र को न देखे और नदी में तैरे नहीं।

जिस आदमी को बहुत दिनों लों जीने की इच्छा हो, वह आदमी, बाल, हड्डी, राख, खपरों के टुकड़ों, कपास की मींग और भूसे के ढेर पर न चढ़े।

जाति से पतित, चाण्डाल, निषाद, शूद्रों से उत्पन्न पुक्कस, मूर्ख, धन से मतवाले, धोबी आदि नीच जाति और नीच काम करने वाले के साथ, थोड़ी देर के लिये भी एक छतरी के नीचे न रहै।

शूद्र को लौकिक बातों का उपदेश न दे। उसे होम का बचा भाग न दे और उसे धर्म्म का उपदेश भी न दे। सेवक के सिवा दूसरों को अपना जूठा न दे। शूद्रों को किसी तरह के व्रत आदि करने की आज्ञा न दे। जो ब्राह्मण शूद्र को धर्म्मोपदेश करता वा

व्रत करने की आज्ञा देता है वह शूद्र सहित, असँवृत नाम नरक में डूबता है।

दोनों हाथों से या दोनों हाथ मिला कर, अपना सिर न खुजलावे। जूठे हाथों से सिर न छूना चाहिये। बिना सिर पर पानी डाले नहाना मना है। चोटी पकड़ कर, किसी को न मारना चाहिये और सिर में तेल लगा कर, उन हाथों से और कोई अङ्ग न छुये।

क्षत्रिय के सिवा दूसरे किसी का दान न ले। कसाई, तेली, कलवार तथा जो लोग वेश्या की आमदनी से जीविका निभाते हैं-ऐसे लोगों का दान न लेना चाहिये।

३—दिन—चर्या

दो घड़ी तड़के उठ कर, धर्म्म और अर्थ का विचार करे। धर्मार्थ का मूल शरीर की रक्षा है। शरीर रक्षा का विचार मनुष्यों को सदैव रखना चाहिये। फिर, वेद के तत्वार्थ को विचारे।

फिर उठ कर, मल-मूत्र त्यागे। स्नान कर के पवित्र हो जाय, तब देर लों सन्ध्या पूजन करता रहे। फिर सन्ध्या होने पर गायत्री का जप करे। देर तक सन्ध्या करने ही से ऋषियों की बड़ी आयु, बुद्धि, यश, कीर्त्ति होती थी और ब्रह्म-तेज बढ़ता था।

सावन के महीने की पौर्णमासी से उपाकर्म्म* आरम्भ करना चाहिये।

---

* आचार्य्य की उपासना के लिये जो होमादि किया जाता है उसे 'उपाकर्म्म' कहते हैं।

अस्पष्ट भाव से वेद पाठ न करे। शूद्रों के पास वेद न पढ़े।

भोजन कर के, बीमार होने पर और आधी रात को बहुत कपड़े पहिन कर और गहरे पानी वाले तालाब में, स्नान न करना चाहिये।

देवताओं की प्रतिमा* पित्रादि, गुरुजन, राजा, स्नातक, गृहस्थ, आचार्य्य, उपनेता, और कपिला गौ की परछाईं को न नाँघना चहिये।

दिन दोपहर को, आधी रात को, श्राद्ध में, माँस खा कर, सवेरे और सन्ध्या को चौराहों पर बहुत देर तक न रहना चाहिये।

अपने वैरी और उस वैरी के सहायकों की, अधर्म्मी, चोर और स्त्रियों की, न तो सेवा करे और न उनके साथ मेल रखे। दूसरी स्त्री के साथ खोटा काम करने से, मनुष्यों की आयु का नाश होता है।

बहुत बढ़ने पर भी, क्षत्रिय, साँप और वेद जानने वाले ब्राह्मण को असमर्थ समझ कर, कभी इनका अपमान न करे। क्योंकि ये तीनों अपमान करने वाले का नाश कर देते हैं।

अगर चेष्टा करने पर भी धन न मिले, तो अपने को अभागा कह कर, अपना भी अपमान न करे। मरने तक धन कमाने का यत्न करे। धन को दुर्लभ समझ उसके पाने की चेष्टा को कभी न छोड़े।

---

* इससे सिद्ध होता है कि जिस समय यह स्मृति बनी थी, उस समय इस देश में मूर्ति-पूजा विद्यमान थी।

मनुष्यों को चाहिये कि वे सच और मीठे वचन बोलें। पर सच बोलने से किसी को बुरा लगे, तो ऐसे कड़ुवे सत्य वचन भी न कहने चाहिये। ऐसे अवसर पर चुप हो जाना चाहिये।

पर झूठ बोलने से यदि कोई प्रसन्न भी होता हो, तो भी झूठ न बोले। यही सनातन धर्म्म है।

अगर कभी बुरी सङ्गत में पड़ जाय, तो वहाँ भी अच्छी बातें कहे। किसीसे विना प्रयोजन शत्रुता या झगड़ा न करे।

बहुत तड़के, सन्ध्या को और दोपहर के समय, बिना जाने आदमी के साथ कहीं न जाय। अकेले, नीच, शूद्र और मूर्ख के साथ भी कभी न जाना चाहिये।

अङ्गहीन या अधिक अङ्ग-वाले, मूर्ख, बुड्ढे, कुरूप, धन-हीन और अपने से नीची जाति वाले पुरुषों पर कभी कटाक्ष (ताना) न करे।

भोजन कर के जूठे हाथ से गऊ, ब्राह्मण और अग्नि को न छुए। रोगी और अपवित्र आदमी को आकाश के तारे आदि न देखने चाहिये।

बिना प्रयोजन शरीर की इन्द्रियों को कभी न छुए, और यदि छू ले, तो आचमन कर के जल से सब इन्द्रियों को छू कर, ढुड़ी (नाभि) को छूना चाहिये।

अवकाश (फ़ुरसत) मिलने पर आलस छोड़ कर, सदा गायत्री और प्रणव का जप करना चाहिये। ब्राह्मणों के लिये यही परम धर्म्म है और सब उप-धर्म्म मात्र हैं।

मल, मूत्र, पैर धोने का पानी, जूठन आदि अपवित्र वस्तुओं को घर से दूर फेंकना चाहिये।

मल, मूत्र का त्यागना, शरीर की शुद्धि, स्नान, दतौन, अञ्जन लगाना और देवताओं का पूजन. रात के अन्त और दिन के पूर्व भाग में कर लेने चाहिये।

अपने से बड़ों को सदा प्रणाम करे। उनके घर पर आने से, उठ कर उनको आदर पूर्वक बिठावे और जब वे उठ कर चलने लगें, तब उनके पीछे पीछे चले।

मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे स्मृतियों में कहे हुए धर्म्म के मूल, सदाचार को आलस छोड़ कर निवाहें।

जो सदाचार का पालन करते हैं, उनको आयु, सन्तान और धन मिलता है। उनकी सब बुराइयाँ दूर होती हैं। बुरे चाल चलन वाले आदमी की लोग बुराई करते हैं और वह सदा बीमार और दुःखी रहता है। बुरे आदमियों की आयु भी थोड़ी होती है।

जो अच्छे चालचलन से रहता है और दूसरों की बुराई में नहीं रहता-वह चाहे भले ही और तरह से बुरा हो, पर उसकी सौ वर्ष की आयु होती है।

जो काम दूसरे के हाथ में हों, उन्हें छोड़ और जो स्वयं कर सकते हो उन्हें करो। क्योंकि इस संसार में पराधीनता से बढ़ कर, दुःख नहीं है और स्वाधीनता से बढ़ कर; सुख नहीं है। सुख दुःख की यही साधारण परिभाषा है।

जिन कामों के करने से मन प्रसन्न हो, उन्हें करो और जिनके करने से मन में ग्लानि उपजे उन कामों को कभी न करना चाहिये।

नास्तिकता, वेदों की और देवताओं की निन्दा, द्वेष, अभिमान, क्रोध तथा कठोरता छोड़ने योग्य हैं। इन्हें छोड़ देना चाहिये।

युद्ध न करने वाले ब्राह्मण के शरीर से लोहू गिराने वाले को परलोक में बड़ा दुःख मिलता है।

ब्राह्मण के शरीर से निकला हुआ लोहू पृथिवी के जितने परमाणुओं को सोखता है, ब्राह्मण के मारने वाले को, उतने ही वर्ष परलोक में, सियार कुत्ता आदि नोच नोच कर खाते हैं। इसलिये ब्राह्मण को कभी न मारना चाहिये।

अधर्म्म करने वाले, झूठे और हिंसा करने वालों को इस संसार में कभी सुख नहीं मिलता।

भलाई चाहने वाले, बुराई करने वालों को सुखी देख, कभी बुराई करने को तय्यार न हों।

जैसे पृथिवी और गौ हाल के हाल फल नहीं देतीं वैसे ही, इस लोक में पाप का फल तुरन्त नहीं मिलता। अधर्म्म धीरे धीरे फैल कर, अधर्म्मी की जड़ काटता रहता है।

पापी कभी अपने पाप के फल से बच भी जाय, तो उसके पाप का फल उसके बेटे और नाती को भोगना पड़ता है पर अधर्म्म का फल रीता नहीं जाता।

अधर्म्म से पहिले लोग बढ़ते हैं, उनकी तरह तरह की इच्छाएँ पूरी होती हैं। उनके वैरी उनसे नीचा देखते हैं। पर पीछे से एक दिन अधर्म्म करने वाले का जड़ से नाश होता है।

व्यर्थ हाथ पाँव और जीभ को न चलावे। खोटी आदत न डाले और दूसरों की बुराई कभी न करे।

जिस चाल पर बाप दादे चले आते हों, उसीको अच्छा समझ कर, उस पर चले। बाप दादों की चाल पर चलने से बुराई नहीं होती।

जिस ब्राह्मण ने तपस्या नहीं की, जिसने विधि पूर्वक वेद नहीं पढ़ा और जिसकी दान लेने की इच्छा है-वह दाता समेत नरक में वैसे ही डूबता है जैसे पत्थर पर बैठ कर, नदी पार जाने वाला आदमी।

जो बनावटी ब्रह्मचारी का रूप धर, भीख माँगता है, वह दूसरे के पापों को भोगता हुआ, मरने पर कुत्ता होता है।

जिसने, अपने ही लिये तालाव खुदवाया हो, उसमें कभी स्नान न करे। उसमें स्नान करने से, तालाब खुदाने वाले के पापों का भागी बनना पड़ता है।

दूसरों की सवारी, खाट, आसन, कुआ, बाग़ और घर, बिना आज्ञा लिये कभी न वर्त्तो। जो वर्त्तता है उसे उनके मालिकों के चौथाई पाप का भागी बनना पड़ता है।

मनुष्यों को चाहिये कि वे सदा यम* ही की सेवा करें, केवल नियमों † ही के आसरे न रहें।

४—न खाने योग्य अन्न

मतवाले, क्रोधी और रोगी का दिया हुआ अन्न कभी न खाना चाहिये। जिस भोजन में बाल या कीड़े पड़े हों, उसे भी न खाना चाहिये और जिसमें जान बूझ कर, पैर लगा दिया गया हो, उसे भी न खाना चाहिये।

---

* यम पाँच हैं—अर्थात् १ हिंसा न करना, २ सच बोलना, ३ ब्रह्मचर्य्य से रहना, ४ चोरी न करना और ५ दान न लेना।

† नियम भी पाँच हैं—जैसे १ शौच, २ सन्तोष, ३ तप, ४ वेद पाठ और ५ यज्ञ करना।

जिस अन्न को गौ ने सूँघ लिया हो, जो भूखे आगन्तुकों के लिये तय्यार किया गया हो और जिसको पण्डित लोग बुरा बतलावें; उसे कभी न खाना चाहिये।

पीठ पीछे बुराई करने वाले का, झूठी गवाही देने वाले का, चोर का, गवैया का, बाजा बजाने वाले का, ब्याज खाने वाले का, यज्ञ बेचने वाले का, नट, दर्ज़ी, लोभी और कृतघ्नी का भी अन्न न खाना चाहिये।

वैद्य, लुहार, केवट, तमाशा करने वाले, सुनार, बँसफुड़ा, कुत्ते पालने वाले, कलाल, धोबी, रङ्गरेज़, निर्दयी (ज़ालिम) के अन्न को द्विज न खावे। जिस घर में दुष्टा स्त्री हो उस घर में भी भोजन करना मना है।

अगर इन लोगों के यहाँ भूल कर भी द्विज भोजन कर लें, तो तीन दिन और जान कर भोजन करने वाला और भी अधिक दिन लों व्रत करे। वर्जित अन्न खाने का यही प्रायश्चित्त है।

ब्राह्मण शूद्र का बनाया हुआ अन्न न खाय। अगर ऐसी दशा में हो कि बिना शूद्रान्न के काम नहीं चल सकता, तो एक रात के निर्वाह योग्य कच्चा सामान ले कर, स्वयं भोजन बना ले।

सदा आलस छोड़ कर, "इष्ट" और "पूर्त" कर्म्म करे। न्याय से प्राप्त धन से श्रद्धा-पूर्वक दोनों कर्म्मों को करे। यज्ञादि कर्म्मों को "इष्ट" कहते हैं और तालाब, कुआँ आदि बनवाना "पूर्त" कहलाता है।

५—विविध दानों का फल

जल देने से तृप्ति, अन्न देने से बहुत सुख, तिल देने से सन्तान और दीवा दान करने से अच्छे नेत्र मिलते हैं।

भूमि देने वाले को भूमि, सोना देने वाले को बड़ी आयु, घर देने वाले को महल, और चाँदी देने वाले को सुन्दर रूप मिलता है।

वस्त्र देने वाले को गोरा शरीर, घोड़ा देने वाले को स्थान, बैल देने वाले को सम्पति और गौ के देने वाले को सूर्य्य के समान तेज मिलता है।

सवारी दान करने वाले को स्त्री; समय देने वाले को राज्य, अन्न दान करने वाले को सदा सुख और ज्ञान का दान करने वाले को ब्रह्म मिलता है। सब दानों से वेद का दान देना ही श्रेष्ठ है।

तपस्या कर के कभी अपने को न भूले, यज्ञ कर के झूठ न बोले, ब्राह्मण से कष्ट मिलने पर भी उसकी निन्दा न करे; और दान कर के कभी दूसरों से न कहे।

६—पापों का फल

झूठ बोलने से यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है। डरने से तप नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणों की निन्दा करने वाले की आयु और दान का डङ्का पीटने वाले के दान का फल घट जाता है।

७—परलोक चिन्ता

जैसे दीमक धीरे धीरे बम्बी बना लेती है, वैसे ही परलोक में सहारे के लिये थोड़ा थोड़ा धर्म्म इकट्ठा करे।

परलोक में न पिता, न माता, न स्त्री, न पुत्र और न कुटुम्ब के दूसरे आदमी ही काम आते हैं। वहाँ अकेला धर्म्म ही काम आता है।

जीव अकेला ही जन्मता और मरता है और अकेले ही अपने पाप पुण्य को भोगता है।

काठ और मट्टी की तरह मरी देह को छोड़ कर, कुटुम्बी चले जाते हैं। केवल धर्म्म ही जीव के साथ जाता है।

इसलिये परलोक की सहायता के लिये नित्य थोड़ा थोड़ा धर्म्म इकट्ठा करे। धर्म्म की सहायता से दुस्तर नरकों से जीव निस्तार पाता है। जिस धर्म्मात्मा पुरुष के पाप तप के बल से नष्ट हुए हैं, वह मरने पर धर्म्म के सहारे स्वर्ग में जाता है।

अपने कुल की उन्नति चाहने वाले को सदा अच्छे अच्छे मनुष्यों के साथ रहना चाहिए। नीचों की सङ्गत अच्छी नहीं।

उत्तम आदमियों के साथ सम्बन्ध रखने से ब्राह्मण उत्तमता पाता है और नीचों की सङ्गत में नीचता आती है।

८—ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें

जिसका जैसा स्वभाव हो, कर्म्म हो, इच्छा हो और वह जैसी सेवा कर सके, वह माननीय लोगों के सामने अपना ज्यों का त्यों स्वभाव, कर्म्म और इच्छा प्रकट करे। जो ऐसा नहीं करता वह पापियों का सरताज है। उसने आत्मा को छिपाया है और इसलिये वह चोर है।

सारे अर्थ वाणी के अधीन हैं। इसलिये सब की जड़ वाणी है। वाणी ही से सब कुछ निकलता है। जो कोई वाणी की चोरी करता है, अर्थात् झूठ बोलता है—वह मानो सब वस्तुओं को चुराता है और वह भारी चोर है। इसलिये झूठ कभी न बोलना चाहिये।

निर्जन स्थान में अकेले रह कर, सदा अपना हित विचारो। इस तरह विचार करने से परम कल्याण होता है।

—जो वेद जानने वाला ब्राह्मण शास्त्र में कही हुई विधि के अनुसार जीविका निभाता है, वह सदैव पाप-रहित हो कर ब्रह्म लोक में आदर पाता है।

पांचवां अध्याय

१—मौत का कारण

ऋषि लोगों ने भृगु जी से पूँछा कि—वेद जानने वाले ब्राह्मणों को मौत का सामना क्यों करना पड़ता है ? वे वेद में कही हुई पूरी आयु भोगने के पहिले असमय में क्यों मर जाते हैं ?"

ऋषियों के इस प्रश्न को सुन मनु जी के धर्म्मात्मा पुत्र भृगु जी ने उत्तर दिया—"वेद का अभ्यास न करने, सदाचार छोड़ने कर्त्तव्य कर्म्मों के करने में आलस करने और दूषित अन्न खाने से मृत्यु ब्राह्मणों को मारती है।

२—अखाद्य-पदार्थ

लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुता और मैली जगह में पैदा होने वाली चीज़ें, द्विज-मात्र को कभी न खाना चाहिये।

वृक्षों का लाल लाल गोंद और वृक्षों के काटने पर जो रस निकलता है वह, लभेरे (लिसोड़ा) और हाल की ब्याई गाय का दूध, जिसे पेवसी कहते हैं, कभी न खानी चाहिये।

दस दिन की ब्याई गाय का, ऊंटनी का, घोड़ी आदि सुम-

वाली मादाओं का; भेड़ का और मरे हुए बच्चे वाली गौ का दूध न पीना चाहिये।

भैंस के सिवाय बनेले किसी जानवर का दूध न पीना चाहिये। स्त्री का दूध और बहुत दिनारे खट्टे पदार्थों को भी न खाना चाहिये।

खट्टे पदार्थों में दही, माठा और इनमें भिगोई हुई पकौड़ी और बड़ा आदि पदार्थ, उत्तम-फल, फूल, मूल के मिलाने से बने पदार्थ खाने चाहिये।

३—जीव-हिंसा के दोष

पशुओं के देह में जितने राम हैं, वृथा पशु-मारने वाले का उतने ही जन्मों में हत्या-जनित विनाश होता है।

इस जगत में वेद की विधि के अनुसार जो हिंसा की जाती है वह हिंसा नहीं कहलाती। क्योंकि वेद से धर्म्म स्वयं उपजा है।

जो आदमी अहिंसक पशुओं को, अपने सुख के लिये मारता है; वह पुरुष इस लोक में, या परलोक में जीता और मरा हुआ है। उसे कहीं सुख नहीं मिलता।

जो आदमी कभी किसी को किसी तरह का कष्ट नहीं देता वह सब का हितैषी कहलाता है और सदा सुख भोगता है।

जो पुरुष किसी को न तो मारता है और न सताता है, वह जो चाहता वही पाता है।

बिना जीव हिंसा के माँस नहीं मिलता और जीवों का मारना बड़ा पाप है। इस पाप के करने वाले को स्वर्ग नहीं मिल सकता। इसलिये माँस को त्यागना चाहिए।

पशु मारने वाले आठ तरह के होते हैं। अर्थात् १-पशु-मारने की आज्ञा देने वाला २-पशु-मारने वाला, ३-अङ्गों को काट कर अलग अलग करने वाला, ४-माँस मोल लेने वाला, ५-बेचने वाला, ६-पकाने वाला, ७-परोसने वाला और ८-माँस खाने वाला। ये आठों घातक हैं और इनको बराबर पाप लगता है।

जो आदमी पितर और देवताओं की पूजा न कर के दूसरे के माँस से अपना माँस बढ़ाता है, वह पाप करने वाला है।

जो मनुष्य एक सौ अश्वमेध यज्ञ करता है और जो माँस नहीं खाता-इन दोनों का पुण्य बराबर है। अर्थात् माँस खाने वाले से माँस न खाने वाले बहुत श्रेष्ठ हैं।

४-शौच-निर्णय।

ज्ञान, तपस्या, अग्नि, आहार, मट्टी, मन, जल, गोबर, वायु, काल और कर्म्म—ये सब देह-धारियों की शुद्धि के कारण हैं।

देह और मन को शुद्ध करने वाली जितनी वस्तुएँ हैं, उन सब में न्याय से पैदा किया हुआ धन और धर्म्म त्याग न करना ही परम शौच है।

जो आदमी धनोपार्जन में शुद्ध है, वही यथार्थ में शुद्ध है। धन शुद्ध न होने से, भले ही कोई मट्टी और पानी से देह शुद्ध करे, पर वह पवित्र नहीं होती।

विद्वान लोग क्षमा से भी शुद्ध होते है, यज्ञादि न करने वाले दान देने से, गुप्त-पाप वाले जप करने से, और उत्तम वेद के जानने वाले तप से शुद्ध होते हैं।

शरीर पानी से, मन सच बोलने से, आत्मा विद्याध्ययन और तप करने से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

सुवर्ण जैसी चमकीली चीज़ें, हीरा आदि रत्न, और पत्थर की बनी चीज़ें, मट्टी, पानी और राख से पवित्र होती हैं।

बिना जूठन लगा सोने का बर्त्तन; शङ्ख, मोती और पत्थर के बर्त्तन और चाँदी के वे बर्त्तन जिन पर नक़ाशी नहीं की गयी—केवल पानी में धोने से शुद्ध हो जाते हैं।

जल और अग्नि के मेल से सोना तथा चाँदी उत्पन्न होती है। इसलिये इनकी शुद्धि भी अग्नि और जल ही से ठीक ठीक होती है।

ताँबे, लोहे, काँसे, पीतल, राँगे और सीसे के बर्तन, राख, खटाई, तथा जल से शुद्ध हो जाते हैं।

पिघलने वाली चीज़ें, घी, तेल आदि, तपा कर, छान लेने से शुद्ध होते हैं। खाट आदि सूत की बुनी वस्तुएँ जल में धोने से और काठ की चीज़ें छीलने से शुद्ध होती हैं।

चमड़ा और चटाई, कपड़े की तरह, और शाक, मूल, तथा फलों की शुद्धि अन्न की तरह होनी चाहिये।

रेशमी और ऊनी कपड़े, रेह तथा मिट्टी से शुद्ध होते हैं। नैपाली कम्बल रीठों से तथा सन के वस्त्र बेल से और छाल के वस्त्र सरसों से शुद्ध होते हैं।

शास्त्र जानने वाले को चाहिये कि वह सींग, शङ्ख, हड्डी और दाँत की बनी चीज़ों की शुद्धि, गो-मूत्र और पानी से या सरसों के बुरादे से करे।

घास फूँस झाड़ने से और घर बुहारने और लीपने पोतने से शुद्ध हो जाता है। मट्टी का बना बर्तन आग में रखने से शुद्ध होता है।

पर जिस मट्टी के बर्तन में शराब, मूत्र, मल, थूक, राल लोहू आदि गिर पड़ता है, वह अग्नि में डालने पर भी शुद्ध नहीं होता।

पृथिवी की शुद्धि, बुहारने, झाड़ने, लीपने, पोतने, छीलने और गौ के बाँधने से होती है।

जिस बर्तन में दुर्गन्ध आती हो, उसे तब तक धोता रहे, जब तक उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय।

जितने जल से गौ की प्यास बुझ जाय, उतना जल यदि शुद्ध भूमि में, साफ हो और उसमें सड़ने वाली चीज़ें न पड़ी हों, तो उसे पवित्र समझना चाहिए।

कारीगर का हाथ, दूकान में बिकने वाली चीज़ें और ब्रह्मचारी की भिक्षा सदा शुद्ध होती है। यह शास्त्र की मर्य्यादा है।

नाभि के ऊपर की, नाक कान आदि इन्द्रियाँ पवित्र हैं और उसके नीचे की अपवित्र हैं। पर देह के सब मल अशुद्ध हैं।

मक्खियाँ, जल के छींटे, छाया, गाय, घोड़ा, सूर्य्य की किरणें, धूलि, भूमि, वायु, अग्नि, ये सब वस्तुएँ शुद्ध हैं।

मल-मूत्र तथा देह के अन्य मलों की शुद्धि के लिये, इतनी मट्टी से रगड़ कर, इन्द्रियाँ धोनी चाहिये, जितनी से मल की दुर्गन्ध दूर हो जाय।

मनुष्यों के शरीर में बारह तरह के मल रहते हैं। उनके नाम ये हैं–१–चरबी, २–वीर्य, ३–खून, ४–मज्जा, ५–मूत्र, ६–विष्ठा, ७–नाक का मैल, ८–कान की ठेठ, ९–कफ, १०–आँसू, ११–आँख का कीचड़, और १२–पसीना।

जो गृहस्थ द्विज हैं, उन्हें चाहिये कि दिशा आने पर मूत्रेन्द्रिय में एक बेर, विष्ठा-द्वार में तीन बेर, बाँयें हाथ में दस बेर और दोनों हाथों में सात बेर मट्टी लगावें।

ब्रह्मचारियों को गृहस्थों से दूनी, वानप्रस्थों को तिगुनी और संन्यासियों को चौगुनी शुद्धि करनी चाहिये।

मुख से निकले हुए थूक की छींट, यदि शरीर पर गिर पड़े तो उससे शरीर अशुद्ध नहीं होता। मुँह में गये हुए मूँछ के बाल और दाँतों के भीतर लगा हुआ अन्न—अशुद्ध नहीं होते।

दूसरे को जल पिलाते समय, अगर उस जल के छींटे, पिलाने वाले के पैर पर गिर पड़ें, तो उनसे जल पिलाने वाला अशुद्ध नहीं होता। वे छींटे शुद्ध भूमि के जल की तरह पवित्र है।

सोके, छींक के, खा कर, नाक साफ कर के, भूल से झूठ बोल कर, पानी पी कर और वेद पढ़ने के पहिले, अति-पवित्र रहने पर भी आचमन करना चाहिये।

५—स्त्री-धर्म्म

स्त्रियाँ बालिका हों, चाहे युवती हों, वा बूढ़ी ही क्यों न हो गयी हों, घर में रह कर भी, उन्हें कोई काम अपने मन से, बिना पूँछे न करना चाहिये।

स्त्रियाँ, बाल्य-काल में पिता के; युवा अवस्था में पति के और पति के मरने पर पुत्र के वश में रहें। स्त्रियों को कभी, किसी दशा में भी स्वतंत्र न होना चाहिये।

स्त्रियों को पिता, पति और पुत्र से अलग हो कर न रहना चाहिये। इनसे अलग रहने से स्त्रियाँ पिता और पति के कुलों में बट्टा लगा देती हैं।

स्त्रियों को चाहिये कि वे सदा प्रसन्न चित्त रहें। घर का काम-काज बड़ी सावधानी से करें। बर्तन कपड़ों आदि को साफ सुथरा रखें और बहुत ख़र्च न करें।

पिता ने अथवा पिता की आज्ञा से भाई ने, जिसे दान कर दिया हो, उस मनुष्य को स्त्री अपना पति समझ कर, उसकी—जब तक वह जीवित रहे—मन लगा कर, सेवा टहल करे। पति के मरने पर कभी खोटा काम न करे।

विवाह में जो वाक्-दान किया जाता है (अर्थात् "इस कन्या को तुम अपनी स्त्री बनाओ") उससे ही स्त्री पर पति का अधिकार होता है।

पति केवल इसी लोक में नहीं, बल्कि परलोक में भी अपनी पत्नी का सुख-दाता होता है। अर्थात् हिन्दुओं के विवाह का सम्बन्ध इसी लोक तक नहीं रहता, पर परलोक तक बना रहता है। इसलिये विधवा का दूसरा विवाह करना—मानों शास्त्र की मर्य्यादा को भङ्ग करना है।

पति भले ही शील रहित हो, दुराचारी हो, पढ़ा लिखा भी न हो और सब प्रकार से निर्गुण हो—पर जो साध्वी स्त्री हैं, उनका यह मुख्य धर्म्म है कि वे अपने पति की देवता के समान सेवा करें।

स्त्रियों को न तो यज्ञ करने की आवश्यकता है न व्रत अथवा उपवास की। उनको तो केवल पति-सेवा ही से स्वर्ग मिलता है।

जो स्त्रियाँ, पर-लोक में भी अपने पति के साथ रहना चाहती हों, उन्हें चाहिये कि पति के मरने पर भी पति की इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करें।

६—विधवा-स्त्रियों के धर्म्म

पति के मरने पर स्त्री, फूल, मूल, फल अथवा शाक पात से पेट भर कर जीवन बितावे, पर कभी अपने पति को छोड़ दूसरे पुरुष का नाम भी न ले।

जितने दिन लों अपनी मृत्यु न हो, उतने दिनों तक कष्ट सह के तथा नियम-पूर्वक, मधु, माँस, मैथुन आदमी त्याग कर, ब्रह्म-चर्य्य व्रत से, साध्वी विधवा स्त्रियाँ, पति के ध्यान में अपना जीवन बितावें।

कई हज़ार कौमार ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने, बिना सन्तान उत्पन्न किये, ब्रह्मचर्य्य के बल से अक्षय (कभी क्षय न होने वाला) स्वर्ग पाया है। उन ब्रह्मचारियों की तरह अपुत्रा होने पर भी साध्वी स्त्रियाँ, पति के मरने पर केवल ब्रह्मचर्य्य के बल से स्वर्ग लोक में पहुँचती हैं।

जो स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न कराने के लालच में पड़ कर, दुरा. चार करती हैं, वे इस लोक में निन्दित और परलोक में बुरी दशा को प्राप्त होती हैं।

पति के सिवाय अन्य पुरुष से उत्पन्न सन्तान से स्त्रियों का कोई भी धर्म्म-कार्य्य नहीं हो सकता। अथवा अपनी स्त्री को छोड़ अन्य स्त्री से उत्पन्न हुई सन्तान से पुरुष का भी कोई काम नहीं चल सकता। शास्त्र जानने वालों ने इस तरह के पुत्र को पुत्र ही नहीं माना। किसी भी शास्त्र में सती साध्वी स्त्री के लिये दूसरा पति करने की आज्ञा नहीं दी गयी।

दुराचार करने वाली स्त्रियाँ मरने पर सियार होती हैं। और तरह तरह के रोगों से पीड़ित हो, दुःख भोगती हैं।

जो स्त्री मन, वचन और कर्म्म से, पति को कभी दुःख नहीं देती और पति का कहा करती हैं, वे मरने पर परलोक में पति के साथ रहती हैं। ऐसी स्त्रियों को अच्छे लोग साध्वी और पतिव्रता कह कर उनकी बड़ाई करते हैं।

अपने धर्म्म को पालन करने वाली स्त्रियाँ, इस लोक में परम कीर्त्ति पाती हैं और मरने पर पतिलोक में जाती हैं।

ऊपर जो धर्म्म बतलाये गये हैं—उन्हींके अनुसार विधवा स्त्रियों को चलना चाहिये। इसीमें उनका कल्याण है। मनुजी के बतलाये धर्म्म को पालन करने वाली विधवा स्त्रियाँ, इस लोक और परलोक में सदा सुख चैन से रहती हैं। स्त्रियों का सती-धर्म्म अमूल्य रत्न हैं। जो स्त्रियाँ सदाचारणी हैं—वे अपने इस अमूल्य रत्न की प्राणों से बढ़ कर, रक्षा करती हैं।

छठवाँ अध्याय

१—वाणप्रस्थ आश्रम

गृहस्थाश्रम के धर्म्म-पालन कर के, द्विजों को उचित है कि जब देखें कि देह की खाल में झुर्रियाँ पड़ने लगीं और वह लटकने लगी हैं सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं और लड़के के लड़का (नाती, पौत्र) हो गया है ; तब वे गृहस्थी को छोड़, तीसरे आश्रम वाणप्रस्थ में प्रवेश करें और वन में चले जाँय।

गाँव में रहना, गाय, घोड़ा, खाट, स्त्री तथा पुत्रों को छोड़ कर, या स्त्री को अपने साथ लेजा कर, वन में वास करें।

वाण-प्रस्थ को चाहिये कि अग्निहोत्र के लिये अपनी सब सामग्री अपने साथ लेता जाय। वन में रह कर, अपनी इन्द्रियों को अपने वस में करने की चेष्टा करे।

वन में रह कर, वाणप्रस्थ को, वन में उत्पन्न हुए, फल फुलों से यज्ञादि का काम चलाना चाहिये।

वाणप्रस्थ को मृग-चर्म्म, या पेड़ों की छाल के वल्कल वस्त्र पहिनने चाहिये। प्रातः और सायं-दोनों जून स्नान करे। वाण-

प्रस्थ को सदा जटा डाढ़ी मूँछ, नख (नाखून) रखने चाहिये। इन्हें कभी न कटवावे।

अपने भोजन के सामान से वाणप्रस्थ को यथाशक्ति बलि-दान करना चाहिये। साथ ही फल फूल जल आदि से अतिथि सेवा भी करनी चाहिये।

वाणप्रस्थ का धर्म्म है कि बन में रह कर, नित्य वेद का पाठ करे, सर्दी गर्मी आदि क्लेशों को सहे। उसे परोपकारी, जितेन्द्रिय दाता और सब प्राणियों में दया-शील होना चाहिये। वाणप्रस्थ को दान कभी न लेना चाहिये।

वाणप्रस्थ को समय समय पर, विधि के अनुसार हवन कर के यज्ञ करते रहना चाहिये। उसे अपना बनाया निमक खाना चाहिये।

जल और थल में पैदा हुए शाक, पवित्र वृक्षों के फूल, जड़ तथा फल और फलों से निकला हुआ घी तेल भी वह खा सकता है।

वाणप्रस्थ साल में एक बार आश्विन मास में, पुराने कपड़ों को और सञ्चित अन्न फलादि को बदल डाले।

हल जोती हुई भूमि में पैदा हुआ अन्न, अगर कोई छोड़ भी गया हो, तो भी वाणप्रस्थ को उसे न खाना चाहिये। चाहे जैसी भूख लगी हो पर वाणप्रस्थ ग्राम में उत्पन्न हुए, फल मूलादि कभी न खाय।

अग्नि में भूँज कर, या स्वयं पके हुए फल खाने चाहिये। वाणप्रस्थ या तो पत्थर से कूट कर खाय, या दाँतों से चबा कर खाय।

वन में रहने वाले वाणप्रस्थ को यथा-शक्ति रात्रि या दिन में अन्न ला कर, एक वेर खाना चाहिये। या एक दिन कुछ भी न खा कर, दूसरे दिन सन्ध्या को खावे। या तीन दिन कुछ भी न खा कर, चौथे दिन रात्रि में खावे।

वाणप्रस्थ, चान्द्रायण विधि के अनुसार शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ कर, नित्य एक एक ग्रास (कौर) कम कर के कृष्णपक्ष में तिथि की संख्यानुसार एक एक ग्रास बढ़ा कर भोजन करे।

वाणप्रस्थ या तो एक पैर से दिन भर खड़ा रहे, या कभी आसन पर बैठ कर, या कभी आसन से उठ कर समय बितावे। उसे चाहिये कि सवेरे, दोपहर और साँझ को, दिन में तीन वेर स्नान करे।

गर्म्मी के दिनों में अपने चारों ओर अग्नि जला कर धूप में बैठ कर तापे। वरसात में मेह में खड़ा रहे और जाड़ों में गीले कपड़े पहिन कर तपस्या करे।

वाणप्रस्थ को चाहिये कि दिन में तीन वेर स्नान कर, पितरों और देवताओं का तर्पण करे और उग्र तपस्या करके शरीर को सुखावे।

फल मूल न मिलने पर, प्राण रखने के लिए, ब्राह्मणों अथवा वन-वासी द्विजातियों से भिक्षा माँग कर खाले।

यदि वन में भिक्षा न मिले तो गाँव में जा कर पत्ते के दोने अथवा मिट्टी के वर्तन में, या हाथ में भिक्षा के अन्न को रख कर, वाणप्रस्थ केवल आठ ग्रास भोजन करे।

वाणप्रस्थ ब्राह्मण इन सब नियमों का पालन करे और आत्म-साधन के लिये उपनिषद् आदि श्रुति का अभ्यास करे।

मृत्यु न होने पर वाणप्रस्थ तीसरे आश्रम को छोड़ चौथे संन्यास-आश्रम को ग्रहण करे।

४—संन्यासाश्रम

ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ और वाणप्रस्थ आश्रमों के कर्म्मों को पूरा कर, भिक्षा, दान और अग्निहोत्रादि कर्म्मों से थक कर और जितेन्द्रिय बन कर, द्विजों को संन्यास लेना चाहिये। संन्यास लेने से जीव की मोक्ष होती है।

ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण-इन तीनों ऋणों को चुका कर, द्विजों को मोक्ष पाने के लिये संन्यासाश्रम में मन लगाना चाहिये। पर इन ऋणों को चुकाये बिना जो संन्यासी होता है वह नरक में पड़ता है*।

विधि-पूर्वक वेद पढ़ कर, धर्म्म-पूर्वक पुत्र उत्पन्न कर के और शक्ति के अनुसार दान कर के द्विज, तीनों ऋणों से छूटता है। ऋणों से छूटने पर, मोक्ष-धर्म्म (संन्यासाश्रम) में उसे मन लगाना चाहिये।

द्विज यदि बिना वेद पढ़े, बिना सन्तान उत्पन्न किये और

---

* मनुस्मृति अ० ६ श्लो० ३५ का यह आशय है। आज कल बनावटी संन्यासी मूड़ घुटाये अक्सर घूमा करते हैं। संन्यास ७५ वर्ष के ऊपर लेना चाहिये। पर आज कल सोलह सत्रह बरस की उमर ही में लोग भगवा-वस्त्र पहन कर "सोहमस्मि" कहने लगते हैं। ऐसे बनावटी संन्यासियों का वचन से भी सत्कार नहीं करना चाहिये वे स्मृति की आज्ञा-उल्लंघन करने के कारण नरक में पड़ेंगे।

बिना यज्ञ किये ही मोक्ष की इच्छा करे, तो उसकी अधोगति होती है।

जिस द्विज से किसी प्राणी को कुछ भय नहीं होता, उसे मरने पर कहीं भी डर नहीं लगता।

संन्यासी को चाहिये कि घर छोड़ कर, पवित्र दण्ड-कमण्डल ले कर, वासना छोड़ कर, और मौन हो कर, संन्यासाश्रम के धर्म्मों का पालन करे।

अकेले रहने से मोक्ष मिलती है। यह समझ कर संन्यासी को सदा अकेले रहना चाहिये।

संन्यासी, अग्नि को न छुए, एक जगह घर बना कर न रहे; शारीरिक व्याधियों को दूर करने की इच्छा न रखे, बुद्धि को स्थिर करे, सदा ब्रह्म-भाव में एकाग्र-चित्त हो कर, जङ्गल में समय बितावे। केवल भिक्षा के लिये गाँवों में जाय।

मुक्त-पुरुष (संसार से छूटे हुए) की पहिचानें ये हैं-भोजन के लिये खपरा, रहने को पेड़ की जड़, ओढ़ने के लिये वल्कल-वस्त्र, एकान्त में रहना, किसी की सहायता की चाहना न करना और सब को एक दृष्टि से देखना।

जो सच्चा संन्यासी है, उसे जीने का न तो हर्ष है और न मरने का दुःख। किन्तु जैसे नौकर अपने स्वामी की आज्ञा की बाट देखता है, वैसे ही संन्यासी मरने की राह देखा करता है।

संन्यासी को चाहिये कि चलते समय नीचे को गर्दन कर के चले, छान के पानी पीवे, सच बोले और शुद्ध मन से काम करे। अर्थात् मन में कुछ और करना कुछ—यह न करे।

दूसरों की अपमान-जनक बातें सहे किसी का स्वयं अपमान

न करे और इस क्षण-भङ्गुर* शरीर को पा कर, किसी के साथ वैर न करे।

दूसरे के क्रोध करने पर स्वयं क्रोध न करे। जो अपनी निन्दा करे उसकी भी प्रशंसा ही करे और उससे मीठे वचन बोले। मन और अपनी बुद्धि के विरुद्ध वचन न कहे।

संन्यासी सदा ब्रह्म का ध्यान किया करे। सब प्रकार की विषय वासना छोड़ दे केवल अपना भरोसा रख कर, मोक्ष पाने के लिये विचरे।

भूमि-कम्प आदि उत्पात, वा नेत्र आदि अङ्गों के फड़कने का अच्छा बुरा फल बतला कर और ग्रह तथा हाथ की रेखा देख संन्यासी, लोगों से भिक्षा न ले। संन्यासी को, शास्त्र की आज्ञा दिखला कर भी, किसी से भीख न लेनी चाहिये।

संन्यासी को धातु की बनी चीज़ें न छूनी चाहिये। उसे दिन में एक ही बेर भिक्षा माँगनी चाहिये। क्योंकि अधिक भिक्षा माँगने वाला संन्यासी विषय वासना में फँस जाता है।

संन्यासी को भिक्षा के लिये सदा ऐसे घर में जाना चाहिये, जहाँ रसोई का धुआँ निकल चुका हो, कूटना पीसना न होता हो, आँच बुझा दी गयी हो और घर के सब लोग भोजन कर चुके हों।

इन्द्रियों को बस में करने का उपाय यह है कि संन्यासी थोड़ा भोजन करे, निर्जन देश में रहे। क्योंकि इन्द्रियों को बस में करने से, वैर, प्रीति छोड़ने और हिंसा न करने से, संन्यासी मोक्ष पा सकता है।

द्विज किसी भी आश्रम में क्यों न हो, जब तक वह बस

* एक क्षण में भङ्ग अर्थात् नाश होने वाला।

आश्रम के धर्म्मों का पालन नहीं करता, तब तक उस आश्रम के चिन्ह धारण करने से उसका कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म्म ही प्रधान है, पर चिन्ह भी त्याज्य नहीं है।

निर्मली वृक्ष का फल डालने से जल साफ होता है। उसका नाम लेने से नहीं। इसी तरह आश्रम के धर्म्मों का पालन करने ही से लाभ होता है। केवल चिन्ह धारण से नहीं।

जीवों की रक्षा के लिये संन्यासी को पृथिवी देख कर पैर रखना चाहिये। जिससे उसके पैरों से कुचल कर, चींटी जैसे छोटे छोटे कीड़े मकोड़े न मरें। संन्यासी की अज्ञानता से दिन और रात में जो प्राणी मरते हैं; उस पाप से छूटने के लिये, स्नान कर के, उसे छः बार प्राणायाम करना चाहिये।

सात व्याहृति, और दस प्रणव सहित तीन प्राणायाम (पूरक, कुम्भक और रेचक) करना ही संन्यासी के लिये परम तपस्या है।

जैसे सोना, और चाँदी आदि धातुओं का मैल आग में तपाने से साफ़ होता है, वैसे ही प्राणायम करने से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

यह शरीर हड्डी, नस, लोहू, माँस से भरा और चमड़े से ढका हुआ है। इसमें मूत्र और विष्ठा भरी है। यह शरीर बुढ़ापा मौत और तरह तरह की बीमारियों के रहने की जगह है। यह समझ कर संन्यासी को इस देह की ममता छोड़नी चाहिये। जैसे पेड़ और नदी के किनारे को पक्षी छोड़ देते हैं, वैसे ही ज्ञानी इस देह बन्धन और संसार के बन्धन को छोड़ देते हैं।

जो ब्राह्मण संन्यासाश्रम के धर्म्म को विधि पूर्वक निभाता है, वह सब पापों से छूट कर परब्रह्म को पाता है।

३—कुटीचर संन्यासियों के धर्म्म

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यासी के चारों आश्रम गृहस्थ ही से पैदा होते हैं। ब्राह्मण चारों आश्रमों में धीरे धीरे शास्त्र की विधि के अनुसार अपने अपने धर्म्म कर्म्म करता हुआ परमगति पाता है।

शास्त्र की रीति से, सब आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि तीनों आश्रम वालों का पालन पोषण गृहस्थों ही से होता है।

जैसे सब नदी-नद समुद्र में जा कर, ठहर जाते हैं वैसे ही तीनों आश्रम, गृहस्थाश्रम के सहारे टिके हुए हैं।

इन चारों आश्रम वाले द्विजातियों को, नीचे लिखा हुआ, दस लक्षण वाला धर्म्म, सदा सेवन करना चाहिये।

धर्म्म के दस लक्षण ये हैं—१—सन्तोष, २—क्षमा, ३—मन को रोकना, ४—चोरी न करना, ५—भीतर बाहर शुद्ध रहना, ६—इन्द्रियों को बस में रखना, ७—विद्या पढ़ना, ८—ईश्वर का ज्ञान, ९—सच बोलना और १०—क्रोध न करना। धर्म्म के इन दस लक्षणों को जो ब्राह्मण पढ़ता है वा करता है, वह परम-गति पाता है।

कुटीचर संन्यासी अग्निहोत्रादि गृहस्थों के सब कर्म्मों को छोड़ कर, कर्म्म दोषों को प्राणायाम से नाश कर के, 'यम' और 'नियमों' के सहारे वेद पढ़े और अपने पुत्र से भोजन वस्त्र ले कर निश्चिन्त हो कर रहै।

इस तरह सब कर्म्मों का फल छोड़, निज कर्म्म में लगा हुआ, निस्पृह और संन्यास बल से पापों को दूर करने वाला द्विज, मोक्ष पाता है।

———

सातवाँ अध्याय

१—राजा की आवश्यकता

विधि पूर्वक उपनयन संस्कार होने पर क्षत्रिय राजा को न्याय के अनुसार प्रजा की रक्षा करनी योग्य है।

राजा के न होने से प्रजा, चोर डाँकुओं के भय से व्याकुल होती है, इसलिये जगत की रक्षा के लिये परमेश्वर ने राजा को उत्पन्न किया है। ईश्वर ने राजा को इन्द्र, वायु, यम, सूर्य्य, अग्नि, वरुण और चन्द्र देव के अंश से बनाया है।

इन्द्रादि देवताओं के अंश की अधिकता होने से—राजा सब प्राणियों को दबा सकता है।

राजा के बालक होने पर भी और उसे साधारण मनुष्य समझ कर—उसका कभी अपमान न करना चाहिये। क्योंकि राजा एक बड़ा देवता है, जो मनुष्य के रूप में है।

असावधानी से अग्नि के पास जो जाता है, अग्नि उसी अकेले को जलाती है, पर राजा के कोप में पड़ने से कुटुम्ब, पशु और धन के साथ नष्ट होना पड़ता है।

जिसके प्रसन्न होने से लक्ष्मी, पराक्रम से जय और क्रोध से मृत्यु मिलती है—वह राजा सर्वतेजोमय है।

जो मूर्ख राजा से द्वेष करता है, वह अवश्य नष्ट होता है। क्योंकि उसे नष्ट करने के लिये राजा मन लगाता है।

इसलिये अच्छों की रक्षा और बुरों को दबाने के लिये राजा जो धर्म्म नियम (क़ानून) बनावे उनके विरुद्ध कभी न चलना चाहिये। उन्हें कभी न भङ्ग (तोड़ना) करना चाहिये।

२—दण्ड की आवश्यकता

राजा की सहायता के लिये ही, ईश्वर ने ब्रह्मतेज-मय दण्ड बनाया है। दण्ड के डर ही से सब लोग अपने धर्म्म से नहीं डिगते।

यथार्थ में दण्ड ही राजा है, दण्ड ही पुरुष है। दण्ड ही नेता है और दण्ड ही शासन-कर्त्ता है। ऋषियों ने धर्म्म ही को आश्रमों का धर्म्म-प्रतिभू* कहा है।

दण्ड सब प्रजा को शासन करता है। दण्ड ही सब की रक्षा करता है। सब के सोने पर भी केवल दण्ड ही जागता रहता है। पण्डित लोगों ने दण्ड ही को धर्म्म की जड़ बतलाया है।

यह दण्ड यदि ठीक तरह से विचार कर बरता जाय, तो सब प्रजा सुखी रहती है और अनुचित रीति से बरतने पर सब प्रजा का नाश होता है।

यदि राजा अपराधियों को दण्ड न दे, तो सबल-निर्बलों को, शूल में छेद मछली की तरह भून डालें। देवताओं के हवि को कुत्ते

---

* ज़ामिनदार।

चाटें, यज्ञ के चरु को कौवे खावें और ऊँचों को नीच बहुत तङ्ग करें।

लोग केवल दण्ड के भय ही से न्याय मार्ग में चलते हैं। क्योंकि निर्दोष मनुष्य जगत में बहुत थोड़े हैं।

जहाँ पापियों और अपराधियों को दण्ड देने के लिये दण्ड का बर्ताव किया जाता है, वहाँ की प्रजा कभी कातर नहीं होती।

किन्तु अन्याय-पूर्वक निर्दोष को दिया हुआ दण्ड, राजा को उसके वंश सहित नाश करता है।

जो राजा सदाचार और न्याय-पूर्वक शासन करता है—वह यदि कभी दुःख पाता है, तो उसका यश, जल में तेल की बूँद की तरह संसार में बहुत दूर तक फैल जाता है।

३—राजा के कर्त्तव्य

धर्म्मात्मा ब्राह्मणों की तथा अन्य वर्णों और चारों आश्रमों की रक्षा के लिये, प्रजापति ने राजा बनाया।

राजा को चाहिये कि वह प्रति दिन सवेरे सो कर उठे और वेद तथा नीति शास्त्र जानने वाले ब्राह्मणों की सेवा करे। वे लोग जैसा कहें, वैसा ही राजा को करना चाहिये।

राजा को चाहिये कि जिन ब्राह्मणों का मन और शरीर वेद जानने से पवित्र हो चुका है और जो अवस्था में बड़े हैं—उनकी सदा सेवा करे।

अच्छी समज और विद्या पढ़ने से विनीत होने पर भी राजा सदा बूढ़े बड़ों से विनय सीखे। क्योंकि विनयी राजा का कभी नाश नहीं होता।

विजय-हीन राजे, हज़ारों हाथी घोड़ों के स्वामी होने पर भी नष्ट हो गये और सदा वन में बसने वाले, बहुतेरे पुरुष विनय गुण से राजा हो गये। महाराज नहुष, वेणु, यवन-राज, सुदास, सुमुख, और निमि विनय रहित होने से मारे गये और महाराज पृथु और मनु ने विनय बल से साम्राज पाया। कुबेर धन के स्वामी हुए और विनय ही से विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व पाया।

राजा को चाहिये कि वेद जानने वाले ब्राह्मणों से वेद सीखे। आमदनी और खर्च तथा शास्त्र-तत्व के जानने वालों से वह दण्डनीति सीखे। तार्किक तथा वेदान्ती ब्राह्मणों से तर्क शास्त्र और ब्रह्म-विद्या; किसान और व्यापारियों से खेती और बनिज तथा पशु-पालन आदि सीखे।

राजा को सदा जितेन्द्रिय होना चाहिये। जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को अपने बस में कर सकता है।

काम के दस और क्रोध के आठ व्यसनों को राजा को छोड़ देना चाहिये।

कामज दोषों से राजा के अर्थ और धर्म्म-दोनों ही नष्ट हो जाते हैं और क्रोधज दोषों में फँसने से राजा को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है।

१—शिकार खेलना, २—जुआ खेलना, ३—दिन में सोना, ४—पराये दोष कहना, ५—स्त्रियों के जाल में फँसना, ६—नशेबाज़ होना, ७—नाचना, ८—बजाना, ९—गाना, और १०—बे मतलब इधर उधर डोलना—इन दस दोषों को "कामज दोष" कहते हैं।

१—चुगली खाना, २—दुस्साहस, ३—द्रोह, ४—डाह, ५—असूया (दूसरों में दोष लगाना) ६—दूसरों का धन हरना, ७—सदा

गाली गलौज करना, ८ निर्दयीपन से ताड़ना करना–ये आठ दोष " क्रोधज-दोष " कहलाते हैं।

क्रोधज और कामज दोष मृत्यु से भी भयङ्कर है। क्योंकि कामज और क्रोधज दोषों में फँसा हुआ पुरुष, मरने पर नरक में गिरता है।

४–मंत्री की योग्यता

जिसकी कई पीढ़ी राज-सेवा में वीती हों, जो वेदादि शास्त्रों का जानने वाला हो, स्वयं शूरवीर हो, युद्ध-विद्या में निपुण हों, अच्छे कुल में जन्मा हो; और जो जाँच में ठीक उतरा हो–ऐसे पुरुष को राजा अपना मंत्री बनावे।

मंत्रियों को बुद्धिमान, कार्य्य-दक्ष, न्याय-पूर्वक धन पैदा करने वाला पवित्र स्वभाव और न्यायवान होना चाहिये।

राजा जितने मंत्रियों की आवश्यकता समझें, उतने मंत्रियों को नियुक्त करे।

५–दूत या जासूसों की योग्यता

राजा को चाहिये कि वह ऐसे दूत रखे जो अनुभवी हों, बहु-श्रुत हों, जो मनुष्यों का चेहरा देखते ही उनके मन की बात ताड़ जाँय, मन के साफ़ हों, चतुर हों और अच्छे कुल में जन्मे हों।

मंत्री के हाथ में दण्ड और दण्ड के अधीन सुशिक्षा और राजा के हाथ में ख़ज़ाना राज और दूत के हाथ में मेल मिलाप या बिगाड़ रहता है।

दूत ही मेल कराता है और दूत ही मिले हुओं में फूट डालते हैं।

दूत, शत्रु-राजा के कामों की अच्छी भाँति देख रेख करे और अपने राजा की ओर से अप्रसन्न, लालची और अपमानित नौकरों पर दृष्टि रखे।

६—शत्रु से राज्य की रक्षा के उपाय

शत्रु से राज्य की रक्षा के लिये राजा को छः तरह के क़िले बनाने चाहिये। १-धन्व-दुर्ग, २-मही-दुर्ग, ३-मन्दुर्ग, ४-वार्द-दुर्ग, ५-नृ-दुर्ग, और ६-गिरि-दुर्ग—ये छः प्रकार के दुर्ग (क़िले) होते हैं।

इन छः प्रकार के दुर्गों में गिरि-दुर्ग ही सब से अच्छा है इसलिये राजा इसी दुर्ग में रहे।

अस्त्र, शस्त्र, अन्न, घोड़ा आदि सवारी के वाहन, धन, ब्राह्मण, अनेक तरह के कारीगर, तरह तरह के यंत्र (कल पुर्ज़े) घास और पानी, इन सब चीज़ों से क़िला भरा रहना चाहिये।

७—राजा का ब्रह्मचारी ब्राह्मणों के साथ बर्ताव

राजा को चाहिये कि उपनयन के बाद, गुरु-गृह में रह कर, जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी विद्या पढ़ कर लौटें—उनका धन धान्य से भली भाँति सत्कार करे। क्योंकि ऐसे ब्राह्मणों को धन देने से राजा की बढ़ती होती है।

धन एकत्र करने का स्थान, ब्राह्मणों के घर से बढ़ कर, दूसरा नहीं है। क्योंकि उनको दिया हुआ धन न तो चोर चुरा सकता है और न शत्रु ही छीन सकता है। इसलिये राजा ब्राह्मणों में अक्षय्य धन जमा करता रहे।

अग्नि में हवन किया हुआ धान्य, गिर कर सूख जाता है और नष्ट भी हो जाता है। पर ब्राह्मण के मुख में हवन किया हुआ, कभी नष्ट नहीं होता।

८—युद्धक्षेत्र में राजा का कर्त्तव्य

ब्राह्मणों की सेवा, भली भाँति प्रजा का पालन और युद्ध के मैदान में वैरी को कभी पीठ न दिखाना—ये तीन काम राजा के हैं। इनको राजा सदा स्मरण रखे। ये तीनों काम राजा का कल्याण करने वाले हैं।

रण-भूमि में शत्रु को पीठ न दिखलाने वाले राजे, रण-भूमि में मारे जाने पर सीधे स्वर्ग जाते हैं।

रण-भूमि में नीचे लिखे लोग अवध्य हैं। राजा इन्हें कभी न मारे।। १-जो रथ से उतर कर नीचे खड़ा हो, २-नपुँसक, ३-प्राण-भय से जो हाथ जोड़े खड़ा हो, ४-जो नङ्गे सिर भागा जाता हो, ५-जो लड़ाई के मैदान से बाहर आ कर बैठा हो, ६--और जो कहे—"मैं तुम्हारा हूँ।"

राजा को चाहिये कि सोते हुए को, कवच उतारे हुए को, नङ्गे को, निहत्थे को, न लड़ने वाले को, देखने वाले को और किसी से मिलने वाले को—युद्ध में कभी न मारे।

जिसका हथियार टूट गया है, जो महा दुःखी है, जिसके बदन में बहुत से घाव लगे हैं, जो डरपोक है और जो भागा

आता है, ऐसे आदमियों को भी राजा को युद्ध में न मारना चाहिये।

युद्ध में जीतने पर धन, धान्य, पुत्र, घोड़ा, रथ, हाथी, स्त्री पशु आदि जिसके हाथ जो वस्तु लगे वह उसी की हो जाती है।

जीत में मिली चीज़ों में से, हाथी, घाड़ा, सोना, चाँदी आदि लड़ाई का सामान, सैनिक लोग, राजा को भेंट करें। फिर राजा इच्छानुसार उन वस्तुओं को यथा-योग्य योद्धाओं में बाँट दे।

राजा को चाहिये कि अपनी सेना को युद्ध की उत्तम शिक्षा दे। अपने विचार और दूतों के दिये हुए समाचारों को गुप्त रखे। सदा बैरी के छिद्रों को ढूँढ़ते रहना राजा का मुख्य कर्त्तव्य है।

राजा बगुले की तरह ध्यान लगा कर, अपना अर्थ विचारे; सिंह की तरह शत्रु पर पराक्रम दिखावे; व्याघ्र की तरह शत्रु को मारे, खरगोश की तरह दुर्बल होने पर भाग जाय।

इस तरह शत्रु को जीतने के लिये राजा के तय्यार होने पर, जो लोग उसका विरोध करें, उन्हें साम, दाम, दण्ड और भेद से राजा अपने बस में कर ले।

९—साम्राज्य रक्षा के उपाय

जैसे भोजन न मिलने से, शरीर सूख कर, मनुष्य का जीवन नष्ट हो जाता है, वैसे ही साम्राज्य में अशान्ति बढ़ने से राजा का जीवन नष्ट हो जाता है।

राज्य की रक्षा के लिये, राज्य के फैलाव के अनुसार दो, तीन, पाँच वा एक सौ गाँवों के बीच, एक सेनापति के अधीन एक सेना रखनी चाहिये।

पहिले हर एक गाँव में, एक एक अधिपति (अफ़सर) रखे। फिर दस दस अधिपतियों के ऊपर एक अधिपति ; फिर दो अधिपतियों पर एक अधिपति, फिर दस अधिपतियों पर एक अधिपति और ऐसे सौ अधिपतियों पर एक प्रधान अधिपति राजा नियुक्त करे।

चोरी आदि के अभियोग पहिले उस गाँव के अधिपति के पास जाने चाहिये। यदि ग्रामाधिपति ठीक ठीक न्याय न कर सके, तो उसकी अपील उससे ऊँचे अधिपति के यहाँ होनी चाहिये।

ग्राम के अधिपति को और अधिपतियों के अधिपतियों को वेतन-रूप में, ग्राम की भूमि दी जाय।

राज से नियुक्त एक हितकारी मंत्री आलस छोड़ कर, गाँवों में दौड़ा करे और ग्रामाधिपतियों के कामों की जाँच पड़ताल करे।

प्रजा की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये राज-सेवकों में प्रायः घूँस खाने वाले और अत्याचार कर के प्रजा का धन लूटने वाले हुआ करते हैं। इसलिये ऐसे राज-सेवकों से प्रजा को बचाना राजा का काम है।

जो राज-सेवक घूँस-ख़ोर हो, राजा को चाहिये उसका सारा माल असबाब छीन ले।

जो सेवक ईमान-दारी से काम करे, उसकी उन्नति करना भी राजा का काम है।

बनिज की वस्तुओं पर राजा को कर (महसूल) लेना चाहिये।

राजा धन के न रहने पर भूखों मरने लगे, पर वेद जानने वाले ब्राह्मणों से कर (टेक्स) न ले।

जिस राज्य में वेद जानने वाले ब्राह्मणों को भूखों मरना पड़ता है, वह राज्य अकालों (क़हतों) से नष्ट हो जाता है।

राजा के रहते यदि प्रजा चोर डाँकुओं के उत्पातों से पीड़ित हो, तो वह राजा जीता नहीं। उसे मरा हुआ समझना चाहिये।

सब धर्म्मों से बढ़ कर, प्रजा का पालन करना ही क्षत्रिय का परम धर्म्म है। इस लिये उसे अपने धर्म्म का सदा पालन करना चाहिये।

राजा बड़े तड़के उठ कर, शौचादि क्रिया से निपट एकाग्र-चित्त हो होम तथा द्विजों का सत्कार करे। फिर ठाठ-बाठ से धूमधाम के साथ राजसभा में आवे।

सभा में बैठ कर, स्नेह की दृष्टि से, मीठे वचन बोल कर, राजा आये हुए प्रजा के लोगों को सन्तुष्ट कर बिदा करे। फिर अपने मंत्रियों से सलाह करे।

राजा को चाहिये कि पहाड़ के ऊपर या निर्जन घर में या एकान्त में, ऐसी जगह सलाह करे, जहाँ भेद लेने वाले न पहुँच सकें।

मंत्री को छोड़ कर, दूसरा कोई भी जिस राजा की सलाह का हाल नहीं खुल पाता, वह थोड़ी सम्पत्ति वाला होने पर भी, धीरे धीरे सारी पृथिवी का स्वामी हो जाता है।

जहाँ सलाह करने की जगह हो, वहाँ से राजा को चाहिये कि म्लेच्छ, रोगी, अन्धा बहिरा, मूर्ख, गूँगा, बहुत बूढ़ा, स्त्री और तोता, मैना आदि चिड़ियों को दूर कर दे।

राजा को अपना काम इस तरह करना चाहिये कि उसका मित्र, वा शत्रु कोई भी बलवान हो कर, उसे पीड़ित न कर सके जब तक शरीर निरोग रहे, तब तक नियम पूर्वक राजा स्वयं शासन करे, और शरीर में क्लेश होने पर, योग्य मंत्रियों के ऊपर राज्य-भार छोड़ दे।

आठवाँ अध्याय

१—साँसारिक-मुख्य-व्यवहार

उत्तम परामर्श देने वाले मंत्रियों तथा विद्वान ब्राह्मणों के सहित राजा न्यायालय (धर्म्माधिकरण सभा में) जाय और वहाँ बैठ कर और दहिना हाथ बाहर कर, वादी, प्रतिवादी (मुद्दई-मुद्दालह) के कथोपकथन (बात चीत) को सुने।

लोगों में अक्सर अठारह तरह के परस्पर व्यवहार होते हैं, जिनसे उनमें झगड़े पैदा हुआ करते हैं। उन झगड़ों को निपटाने के लिये गवाही और लिखे हुए प्रमाणों के सहारे न्याय करना चाहिये।

झगड़े की मुख्य जड़ ये अठारह बातें हैं :—

१—निक्षेप (धरोहर)।

२—ऋण-दान (क़र्ज़-देना)।

३—अस्वामी विक्रय (विना मालिक की परवानगी उसका माल बेच देना)।

४—सम्भूय-समुत्थान (साझे का व्यापार)।

५—दत्ताप्रदानिक (दी हुई वस्तु का फेर लेना)।

६-वेतन-दानं (नौकरी यानी तनख़्वाह का न देना)।
७-सँविद् व्यतिक्रम (प्रतिज्ञा-इक़रार के विरुद्ध चलना)
८-क्रय विक्रयानुशय-(ख़रीदने और बेचने के झगड़े)।
९-स्वामीपाल विवाद (पशु-स्वामी और पशु-पाल का झगड़ा)
१०-सीमा विवाद (मेंड़ पर लड़ाई)।
११-कड़ी बातों की कहा सुनी।
१२-चोरी।
१३-साहस (ज़बरदस्ती धन छीन लेना)।
१४-स्त्री संग्रहण (दूसरे की स्त्री को ले लेना)।
१५-स्त्री और पुरुष के धर्म्मों की मीमाँसा।
१६-मार पीट।
१७-धन का हिस्सा बाँट।
१८-जुआ और आह्वय (जुआ खेलना और जानवरों की लड़ाई में दाँव लगा कर हारना जीतना)।

जब राजा स्वयं इन कार्य्यों को निपटाने में असमर्थ हो, तब विद्वान नीति जानने वाले किसी ब्राह्मण को इन कामों के लिये नियुक्त करे।

वह ब्राह्मण, तीन सभ्यों के साथ सभा में बैठ कर, एकान्त में राज काज करे।

२—सभा-नियम

पहिले तो सभा में जाय नहीं और यदि जाय तो सत्य बात कहे। सभा में बैठ कर, कुछ न कहने वाला और झूठ बोलने वाला; दोनों तरह के मनुष्य पाप के भागी होते हैं।

जिस सभा में सभासदों के सामने धर्म्म का अधर्म्म से और सच का झूठ से नाश किया जाता है, उस सभा के सभासद् नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य धर्म्म को नष्ट करता है, उसे धर्म्म नष्ट करता है, धर्म्म की रक्षा करने से, धर्म्म ही उसकी रक्षा करता है। इस लिये धर्म्म की सदा रक्षा करनी चाहिये जिससे नष्ट हुआ धर्म्म, हमें नष्ट न करे।

प्राणी मात्र का धर्म्म ही मित्र है। मरने के बाद धर्म्म ही हमारे साथ जाता है और सब कुछ तो शरीर के साथ साथ यहीं नष्ट हो जाता है।

मिथ्या विचार से जो पाप होता है उसका एक हिस्सा अधर्म्म करने वाले को, दूसरा हिस्सा झूठी साक्षी (गवाही) देने वाले को, तीसरा सभासदों (जूरियों या असेसरों) को और चौथा राजा को मिलता है।

३—राज्य-नाश के कारण

जिस राजा के सामने शूद्र न्याय अन्याय का विचार करता है उस राजा का उसी तरह नाश होता है, जैसे दलदल में फँसी हुई गौ का।

जिस राज्य में शूद्र और नास्तिकों की बढ़ती होती है और जहाँ द्विजों की घटती होती है—वह राज्य, दुर्भिक्ष तथा अनेक प्रकार के उपद्रवों से बहुत जल्द नष्ट होता है।

४–न्याय का विधान

अर्थ, अनर्थ, धर्म्म, अधर्म्म को जान कर, वर्ण के अनुसार राजा कार्य्य करे। अर्थात् पहिले ब्राह्मण का, फिर क्षत्रिय का, फिर वैश्य का और तब शूद्र का विचार करे।

राजा बाहिरी चिन्हों से लोगों के मन के भाव जानने का यत्न करे। राजा, लोगों के स्वर, वर्ण, इशारा, आकार, नेत्र और हाव-भाव की ओर ध्यान रखे।

आकार, इशारे, चाल, ढाल, बातचीत, नाक, आँख, और मुँह के विचकाने से लोगों के मन के भाव जाने जा सकते हैं।

अनाथ बालकों के धन की राजा तब तक रक्षा करे, जब तक वे पढ़ कर, समझदार न हो जाँय। सोलह वर्ष के बाद बालकपन बीत जाता है।

बिना मालिक (लावारसी) के धन को राजा तीन वर्ष तक अपने ख़ज़ाने में जमा रखे। इस बीच में अगर उस धन का स्वामी आवे, तो उसकी जाँच कर के, उसका धन उसे लौटा दे। तीन वर्ष बीत जाने पर, राजा उस धन को अपने काम में लगा ले।

यदि कोई लावारसी माल का दावा करे और पूँछने पर ठीक-ठीक पता न बता सके ; तो राजा उसे चोर की तरह दण्ड दे अर्थात् झूठा दावा करने वाले पर उतना ज़ुर्माना (अर्थ-दण्ड) करे जितने का उसने दावा किया हो।

यदि किसी विद्वान ब्राह्मणों को पहिले का रखा धन कहीं मिले तो वह धन उसीका होगा। राजा को उसमें से कुछ भी हिस्सा न मिलेगा। क्योंकि ब्राह्मण सब का स्वामी है।

अगर राजा को कहीं गड़ा हुआ धन मिले, तो उसका आधा धन वह ब्राह्मणों को दे डाले और आधा अपने ख़ज़ाने में जमा करे।

किसी वर्ण का क्यों न हो, धन चोरी जाने पर, राजा चोर से धन वसूल करे और जिसका वह धन हो उसे लौटा दे। यदि उसे न दे के स्वयं ले ले, तो चोरी का पाप उसे लगता है।

जैसे घायल हिरन के लोहू की बूंदों के सहारे, शिकारी हिरन का पता लगा लेते हैं वैसे ही राजा भी अनुमान से यथार्थ बात का निश्चय कर ले।

महाजन यदि क़र्ज़दार से अपना पावना दिलवाने की अर्ज़ी दे, तो राजा गवाही साखी, वा टीप आदि से दिये हुए धन को प्रमाणित कर, आसामी से महाजन को धन दिला दे।

महाजन जिस उपाय से आसामी से अपना धन लेना चाहे, राजा उसी तरह उसे धन दिला दे।

"तुम्हारा मेरे पास कुछ पावना नहीं है"—ऐसा कह के यदि आसामी महाजन का देना मुकरे, तो राजा गवाही साखी ले कर, यदि धन देना प्रमाणित हो, तो धन दिलावे और झूठ बोलने के लिये आसामी पर उसकी हैसियत देख कर जुर्माना भी करे।

दावा होने पर राजा पहिले आसामी से कहे कि महाजन का "देना दो"। अगर आसामी देना चुकाना अस्वीकार करे, तब साखी-गवाही राजा ले।

जो वादी ऐसा साक्षी (गवाह) न्याय सभा में लावे-जो घटना-स्थान पर न रहा हो, जो पहिले कह कर पीछे मुकर जाय, जो परस्पर विरुद्ध गवाही दे या असली बात कह कर उसे फिर मेटे, जो एक वार एक बात सकार कर, दूसरी वार वही बात

पूछने पर नकारे, या जो अकेले में गवाहों को ले जाकर सिखाता पढ़ाता हो, जो विधि पूर्वक पूछने पर प्रश्न का उत्तर न दे, जो अपने दावे को साबित न कर सके—ऐसा दावीदार न्याय सभा में हार जाता है।

५—साक्षी (गवाह) कैसे होने चाहिये ?

विवाहित, पुत्रवान् और एक जगह रहने वाले क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के लोग साक्षी देने योग्य हैं। शान्त-समय में जहाँ तहाँ के लोगों की साक्षी नहीं मानी जा सकती है।

सच बोलने वाले, लोभ-रहित, मनुष्य की गवाही मानी जा सकती है।

धन के लोभ से गवाही देने वाले, मित्र, नौकर, शत्रु और जो पहली झूठी गवाही दे चुके हैं, जो रोगी हैं और जो महा-पातकों से दूषित हैं-ऐसे लोगों की गवाही नहीं ली जा सकती।

रसोईदार, नट, वेदों के जानने वाले, ब्रह्मचारी और संन्यासियों की गवाही राजा को न लेनी चाहिये।

दास, बदनाम, लुटेरे, वर्जित काम करने वाले, बूढ़े, बालक, चाण्डाल आदि नीच-जाति के लोग, अन्धे, कुबड़े, आदि की राजा गवाही न ले।

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियाँ, द्विजों के साक्षी द्विज और नीचों के नीच ही साक्षी होने चाहिये।

पाप करने वाले समझते हैं कि हमें कोई नहीं देखता, पर उन्हें देवता सदा देखते हैं और उनके हृदय में बैठा हुआ परमात्मा उनके किये हुए पापों को देखता है।

ब्राह्मण को "बोलिये," क्षत्रिय को "सच कहो" वैश्य को "गऊ बीज और सुवर्ण की सौगन्द खाकर कहो", और शूद्र को "सब पापों की सौगन्द खा कर बोलो"–कह कर, राजा प्रश्न करे।

गवाह बन कर, झूठ बोलने वाले को, ब्राह्मण-हत्या, बालक-हत्या, मित्र के साथ द्रोह करने और कृतघ्न के समान पाप लगता है।

६—दण्ड-विधान

स्वायम्भू-मनु ने दण्ड देने के जो दस स्थान कहे हैं, वे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों ही के लिये हैं, ब्राह्मणों के लिये नहीं।

१–उपस्थ (गुप्त-अङ्ग) २–उदर (पेट) ३–जिह्वा, ४–दोनों हाथ, ५–नेत्र, ६–नासिका, ७–दोनों कान, ८–धन, ९–दोनों पैर और १०–सारा शरीर (महा-अपराध करने पर) ये दश दण्ड के स्थान हैं।

अपराध सिद्ध होने पर राजा अपराधी का बल तथा उसके अपराध को विचार कर दण्ड दे।

दण्ड न देने योग्य को दण्ड देने से और दण्ड देने योग्य अपराधी को दण्ड न देने से राजा की निन्दा होती है और मरने पर, वह नरक में गिरता है।

७—ब्याज की व्यवस्था

साधुओं के आचार का विचार कर, सत्पुरुष दो रुपया* सैकड़ा ब्याज ले।

---

* मूल ग्रन्थ में "पण" लिखा है।

ऋण-दाता को ब्राह्मण से २ रुपया सैकड़ा, क्षत्रिय से ३ रुपया सैकड़ा, वैश्य से ४ रुपया और शूद्र से ५ रुपया सैकड़ा ब्याज लेना चाहिये।

गिरवी रक्खे हुए माल को महाजन काम में न लावे। अगर काम में लावेगा तो उसे ब्याज न मिलेगा।

यदि धनी अपने सामने अपनी वस्तु को दूसरे को दस बरस तक बर्तता देख कर, कुछ न कहे, तो फिर वह उसे नहीं पा सकता।

साथ ही धनी पागल न हो और बालक न होना चाहिये।

कोई चीज़ मोल ले कर, या बेच कर, दस दिन के भीतर, नापसन्द होने पर, फेरी जा सकती है।

८—फुटकल बातें।

गाँव के आस पास चार सौ हाथ या तीन लाठी नाँप कर, भूमि छोड़ देनी चाहिये और बड़े बड़े शहरों में गाँव से तिगुनी छोड़नी चाहिये।

राजा चोरों को दबाने के लिये सदा तय्यार रहे। चोरों को दण्ड देने से राजा का यश फैलता है और राज्य की बढ़ती होती है।

प्रजा जो धर्म्म करती है, रक्षा करने वाला राजा उसका छठवाँ हिस्सा पाता है।

जैसे द्विज यज्ञ कर के पवित्र होता है, वैसे ही पापियों को दण्ड देने और साधुओं का संग्रह करने से राजा पवित्र होता है।

जिस अपराध से अन्य लोगों को एक रुपया जुर्माना हो सकता है, राजा यदि स्वयं उस अपराध को करे, तो उसे एक हज़ार रुपया जुर्माना देना पड़ेगा। राजा के जुर्माने का रुपया जल में फेंक दे, या ब्राह्मण को दे दे।

चोरी करने से, जो पाप शूद्र को होता है, उससे दूना वैश्य को, वैश्य से दूना क्षत्रिय को और उससे दूना ब्राह्मण को होता है।

वनस्पतियों के फल मूल, होम के लिये काठ और गऊ के खिलाने के लिये घास का लेना चोरी नहीं कहा जाता।

सब पापों का पापी होने पर भी ब्राह्मण को जान से कभी न मारे, धन सहित उसे देश से निकाल दे।

जिस राजा के राज्य में चोर, व्यभिचारी और कठोर वचन बोलने वाले, दुस्साहसी और डाँकू गुण्डे नहीं हैं—वह राजा इन्द्र-लोक-वासी होता है।

स्त्री, पुत्र, दास—ये तीनों शास्त्र में निर्द्धन कहलाते हैं। ये जो कुछ धन पैदा करें, उस पर उनके स्वामी ही का अधिकार होता है।

राजा नित्य साधारण और विशेष कामों को, सवारी, आय-व्यय और खानि तथा ख़ज़ाने को देखे।

राजा इस तरह सारे व्यवहारों को पूरा करता हुआ, सब पापों से छुटकारा पा कर, परम-गति पाता है।

नवाँ अध्याय

१—स्त्रियों की रक्षा

पति को चाहिये कि वह सदा अपनी स्त्री को अपने हाथ में रखे और स्त्रियों को हाथ में रखने का सब से उत्तम उपाय यह है कि उन्हें सदा धर्म्म में तत्पर रखे।

कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा उसका पिता करे; युवा अवस्था में पति और वृद्धा अवस्था में पुत्र अपनी माता की रक्षा करे। स्त्रियों को कभी स्वतंत्रता न देनी चाहिये।

बुरी सङ्गत से स्त्रियों को सदा बचाना चाहिये, क्योंकि इसमें ज़रा सी भी असावधानी होने से स्त्रियाँ पिता और पति-दोनों के कुलों में कलंक लगा देती हैं।

स्त्री की रक्षा करना परम धर्म्म समझ कर, दुर्बल, अन्धे और लूलों को भी अपनी अपनी पत्नी की सदा रक्षा करनी चाहिये।

जो लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, वे अपने वंश और अपने चरित्र की भी रक्षा करते हैं।

पति अपनी पत्नी के शरीर में प्रविष्ट हो कर, पुत्र रूप से जन्मता है। स्त्री से पुनर्वार जन्मने के कारण, भार्य्या को जाया कहते हैं।

बल से कोई स्त्री की रक्षा नहीं कर सकता। स्त्रियों की रक्षा केवल इन उपायों से हो सकती है। धन का संग्रह, व्यय, सफ़ाई धर्म्म रसोई और घर की वस्तुओं की देख भाल स्त्रियों को सौंप देनी चाहिए, जिससे उनका मन सदा काम-काज में लगा रहे।

जो दुःशीला स्त्री, स्वयं अपनी रक्षा करने का यत्न नहीं करती, उसकी रक्षा घर में बन्द कर के रखने से भी नहीं हो सकती।

पर जो सदा अपनी रक्षा में तत्पर है—कोई उसकी रक्षा न भी करे, तो भी वह सुरक्षिता रहती है।

१-मद्यपीना, २-बुरी सङ्गत, ३-पति से अलग रहना, ४-इधर उधर घूमना, ५-बेसमय सोना और ६-दूसरों के घर में रहना—ये छः दोष स्त्रियों को ख़राब कर देते हैं।

स्त्रियों के वैदिक संस्कार नहीं होने चाहिये। ये वेद की अधिकारिणी नहीं हैं।

२—साधारण-प्रजा-धर्म्म

स्त्रियाँ बड़ी भाग्यवती होती हैं। सन्तान उत्पन्न करने से—ये सत्कार योग्य हैं। स्त्रियाँ घर की शोभा हैं। घरवाली और स्त्री में कुछ भी भेद नहीं है।

सन्तान पैदा करना, सन्तान का पालना-पोसना, घर का काम धन्धा करना, अतिथियों का सत्कार करना-स्त्रियों द्वारा ही हो सकता है। इन कामों की साधना स्त्रियाँ ही हैं।

बटवारा एक ही बार होता है। कन्यादान एक ही बार होता है*। प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है, जो सज्जन हैं वे इन तीनों बातों को एक ही बेर करते हैं।

देवर के वास्ते जेठे भाई की स्त्री माता के समान और जेठे भाई के लिये लौहरे भाई की स्त्री पुत्र-वधू के समान समझनी चाहिये।

३—विधवा-विवाह की निन्दा।

विवाह-शास्त्र में ऐसी कोई भी विधि नहीं है, जिससे विधवाओं का पुनर्विवाह† हो सके।

सुशिक्षित, शास्त्र जानने वाले, द्विजाति विधवा के विवाह को पशु-धर्म्म कह कर, निन्दा करते हैं। कहते हैं, पहिले राजा वेण के राज्य-शासन में यह रीति मनुष्यों में प्रचलित हुई थी।

राजा वेण ने बल-पूर्वक, ऋषियों के मना करने पर भी, पाप में डूब कर, यह प्रथा चला कर, वर्ण-सङ्करों (दोगलों) को उत्पन्न किया था।

४—त्याज्य-स्त्रियाँ

एक के साथ सगाई कर के, दूसरे के साथ अपनी कन्या का विवाह करने वाले पुरुष को पाप का भागी होना पड़ता है।

---

* मनु अ० ६, श्लो० ४७ का यह आशय है। स्त्रियों का एक बार ही विवाह होता है। पुनर्विवाह करना शास्त्र-विरुद्ध है।

† न विवाह विधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्म्मो विगर्हितः ॥ ६६ ॥

यदि स्त्री में दोष हो, बीमार हो, और धोखा दे कर विवाह दी गई हो, तो पति उस स्त्री को छोड़ सकता है।

कन्या का दोष बतलाये बिना, जो कन्यादान करता है, उस मन्द-बुद्धि कन्या-दाता का दान, यदि वर चाहे तो न ले। इसी तरह कन्या भले ही जन्म-भर क्वारी रहे, पर गुण-हीन पुरुष के साथ कभी विवाह न करे।

५—विवाह का समय

तीस वर्ष के पुरुष का बारह वर्ष की कन्या से और चौबीस वर्ष के युवा का आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। पर यदि धर्म्म जाने का डर हो तो शीघ्र भी विवाह हो सकता है।

ब्याहे हुए स्त्री पुरुष को सदाचार से रहना चाहिये, जिससे आपस में मन बिगड़ौल न हो।

६—बटवारा

बाप के मरने पर, सब भाई मिल कर, माता पिता के धन को बराबर बराबर बाँट लें। पिता के रहते पुत्रों को पिता के माल टाल में हाथ लगाने का कुछ भी अधिकार नहीं है।

यदि छोटे भाई अपने जेठे भाई को पिता के समान मान कर उससे भोजन कपड़े भर लिया चाहे, तो पिता की सारी सम्पत्ति का मालिक जेठा भाई ही होगा।

जेठे पुत्र के जन्मते ही मनुष्य पुत्रवान् होता है और पितरों के ऋण से छूटता है। इसलिये जेठा पुत्र अपने पिता की सारी सम्पत्ति पाने का अधिकारी है।

जिस जेठे पुत्र के जन्मते ही पिता पितरों के ऋण से छूटता है और अमर होता है—वही जेठा पुत्र धर्म से उत्पन्न पुत्र है। दूसरे पुत्र "कामज" पुत्र कहलाते हैं।

बड़ा भाई छोटे भाइयों को पुत्र समझ कर पाले और छोटे भाई अपने बड़े भाई को पिता मान कर उसके कहे में चलें।

पिता का धन बाँटने के समय सब वस्तुओं का बीसवाँ हिस्सा और सब से बढ़िया वस्तु, जेठे पुत्र को मिलेगी। मझले को चालीसवाँ हिस्सा और अस्सी हिस्से में से एक हिस्सा अधिक मिलेगा—बाकी बचा हुआ धन, सब भाइयों को बराबर मिलेगा।

जिन बहिनों का ब्याह नहीं हुआ उनके विवाह के लिये हरेक भाई को अपने अपने हिस्से में से चौथाई हिस्सा अवश्य देना चाहिये। न देने वाला भाई पतित होता है।

पौत्र (लड़के का लड़का) और दौहित्र (लड़की का लड़का) में कुछ भी भेद नहीं है।

टूटी नाँव में चढ़ कर पार उतरने में जो दुर्गति होती है, कुपुत्रों (कपूतों) से परलोक वासियों को उसी तरह कष्ट भोगना पड़ता है।

पति ने अपने जीवन काल में जो गहने अपने स्त्री के लिये बनवा दिये हों, पति के मर जाने पर, कोई उन्हें नहीं बटा सकता। उनको लेने वाला पतित होता है।

७—जुआ

पाँसा आदि के खेल को "जुआ" कहते हैं और घोड़े मेढ़े आदि पशुओं द्वारा बाजी बद कर, जो खेल होता है—उसे "समा-ह्वय" कहते हैं।

राजा अपने राज्य में, ये दोनों कर्म्म रोके। ये दोनों कर्म्म राजाओं के नाश का कारण होते हैं।

जुआ और समाह्वय खुलंखुल्ला चोरी है। इसलिये इन्हें रोकने में राजा को सदा तत्पर रहना चाहिये।

जो आदमी स्वयं जुआ खेलता, या दूसरों को खिलाता है और जो समाह्वय स्वयं करता है, वा दूसरों से कराता है; राजा उसके अपराध को विचार कर, या तो उसके हाथ कटवा ले, या उसे मरवा डाले।

राजा जुवारी, धूर्त्त, क्रूर, पाखण्डी और नियम विरुद्ध काम करने वाले और शराबी मनुष्यों को नगर में न बसा कर, बाहर निकाल दे।

ये सब छिपे हुए चोर हैं—जो भलेमानसों को सताया करते हैं।

जुआ खेलना बड़ा बुरा काम है। इसके खेलने से बैर बढ़ता है। इसलिये जो बुद्धिमान हैं–वे हँसी में भी कभी जुआ न खेलें।

छिपके वा खुलंखुल्ला जो लोग जुआ खेलते हैं; राजा उन्हें दण्ड दे।

राजा को चाहिये कि राज्य की रक्षा और उसके बढ़ाने वाले कामों को सदा करता रहे। क्योंकि कामों को आरम्भ करने वाले ही को लक्ष्मी मिलती है।

असल में, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग—राजा के बर्ताव पर टिके हैं। असल में राजा ही का दूसरा नाम युग है।

जब राजा प्रजा की उन्नति की ओर से हाथ खींच कर, सो रहता है; तभी कलियुग लगता है। जब जाग कर भी काम नहीं करता तब द्वापर-युग आरम्भ होता है। जब कर्म्म करने को तैयार होता है, तब त्रेता-युग समझा जाता है और जब शास्त्रानुसार

बर्ताव करता हुआ राजा विचरता है, तब सत्य-युग बरतने लगता है।

ब्राह्मण महिमा

जिन ब्राह्मणों के क्रोध करने पर अग्नि को सर्व-भक्षी बनना पड़ा; जिन्होंने समुद्र का जल पीने योग्य न रखा; जिन्होंने चन्द्रमा को क्षयी-रोग से पीड़ित कर, फिर पूरा किया; उन ब्राह्मणों को क्रुद्ध कर, कौन नष्ट न होगा!

जो स्वर्गादि-लोक और लोक-वालों की रचना कर सकते हैं, जो क्रुद्ध होने पर देवताओं को अदेवता कर सकते हैं, उन ब्राह्मणों को क्रुद्ध कर के भला किसकी बढ़ती हो सकती है!

चाहे संस्कार-युक्त हो, चाहे असंस्कार-युक्त हो, जैसे अग्नि महत् देवता है, वैसे ही ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो या अविद्वान्, वह भी महा-देवता स्वरूप है।

वेद के जानने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा टहल करना ही शूद्र का परम-सुख कारी धर्म्म है।

साफ़ रहने वाला, ऊँची जाति की सेवा करने वाला, मीठी बात बोलने वाला, अहङ्कार रहित और नित्य ब्राह्मणों के आश्रित रहने वाला शूद्र, धीरे धीरे श्रेष्ठ जातित्व को पाता है

दसवां अध्याय

१—जन्म से वर्ण-व्यवस्था

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को चाहिये कि अपना अपना धर्म्म करते हुए, विद्या पढ़ें। केवल ब्राह्मण ही पढ़ाने का अधिकारी है। क्षत्रिय और वैश्य नहीं। शास्त्रकारों ने यही निर्णय कर रखा है।

ब्राह्मणों को चाहिये कि शास्त्रानुसार चारों वर्णों के जीवन-निर्वाह के उपाय जानें और उनको बतावें। साथ ही आप भी शास्त्र में कहे हुए कर्म्म करें।

उपनयनसंस्कार होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को "द्विज" कहते हैं। उपनयन संस्कार रहित शूद्र "द्विज" नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,—ये चार ही वर्ण हैं। पाँचवाँ वर्ण नहीं है।

निज विवाहिता स्त्री में ब्राह्मण के द्वारा उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण, क्षत्रिय के द्वारा क्षत्रिय, वैश्य के द्वारा वैश्य और शूद्र के द्वारा शूद्र उत्पन्न होता है। अविवाहिता और दूसरे वर्ण की स्त्री की कोख से उत्पन्न हुए सन्तान को वर्ण-सङ्कर (दोग़ला) कहते हैं।

२—अन्य जातियों के कर्म्म

निषाद जाति का काम मछली मारना है; बहेलियों का काम चिड़ियाँ आदि मारना है; सूत-जाति का कर्म्म रथ हाँकना, अम्बष्ठ का चिकित्सा करना, वैदेह का अन्तःपुर (रनवास) की रखवाली करना और मागध-जाति का काम व्यापार करना है।

क्षत्र, उग्र और पुक्कस-जाति वालों का काम बिलों में बसने वाले जीवों को मारना है। धिग्वण (चमार) जाति का काम चमड़े की चीजें बनाना, और वेण जाति का काम करताल मृदङ्ग बजाना है।

ये सब जातियाँ अपना अपना काम करती हुईं, चैत्यवृक्ष के तले, पर्वत की तलहटी, मरघट और उप-वनों में रहें।

चाण्डाल और श्वपच जाति के लोगों को गाँव के बाहर बसाना चाहिये। इनके गधे और कुत्ते ही धन हैं। मुर्दों के कपड़े पहिनना, फूटे बर्तन में खाना, लोहे के गहने पहिनना और एक जगह न रह कर सब ठौर घूमना इनका नित्य का कर्म्म है।

सत्कर्म्मों को करते समय इनको देखना भी न चाहिये इन्हें अन्न देना हो तो नौकर के हाथ फूटे बर्तन में भिजवादे। अनार्य्यता, निठुरता और वध कार्य्य करना—ये काम नीचों के हैं।

३—चारो वर्णों के संक्षिप्त कर्म्म

हिंसा न करना, सत्य बोलना, अन्याय से किसी का धन न छीनना, पवित्र रहना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना—ये कर्म्म चारों वर्ण वालों के हैं।

१ २ ३ ४ ५ ६
पढ़ना, पढ़ाना यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना—ये छः काम ब्राह्मणों के हैं।

इन छः कर्म्मों में से तीन कर्म्मों से ब्राह्मण अपनी जीविका चलावे। अर्थात् यज्ञ करा कर, पढ़ा कर और दान ले कर।

क्षत्रिय को पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना ही बतलाया गया है। पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना, क्षत्रिय के लिये मना है।

वैश्य भी क्षत्रिय की तरह न तो पढ़ावे, न यज्ञ करावे और न दान ले। क्षत्रिय और वैश्य की जीविका के उपाय अलग अलग हैं।

क्षत्रियों को हथियार चला कर और वैश्यों को व्यापार कर के गाय बैल पाल कर, और खेती कर के, जीविका चलानी चाहिये।

वैरी को युद्ध में जीतना और युद्ध से न भागना—ये क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म्म हैं। राजा वैश्यों को हथियार से रक्षा करे और इसके लिये उनसे उचित कर ले।

शूद्र की जीविका तीनों वर्णों की सेवा से चलती है।

४—आपद् धर्म्म

आपद्-काल में ब्राह्मण के लिये जैसी जीविका कही है, क्षत्रिय विपद्-ग्रस्त होने पर उसी तरह जीविका निभावे, पर सदा के लिये विप्र-वृत्ति धारण न करे।

विपद्-ग्रस्त ब्राह्मण, सब लोगों से दान ले सकता है; ब्राह्मण स्वभाव ही से जल और अग्नि की तरह पवित्र है। आपद्-काल में निन्दित को यज्ञ कराने पढ़ाने और दान लेने से भी वे अपवित्र नहीं हो सकते।

भूख के मारे यदि प्राण निकलते हों, तो ब्राह्मण नीच का भी अन्न ले सकता है।

यह पाप होम और जप करने से छूट जाता है।
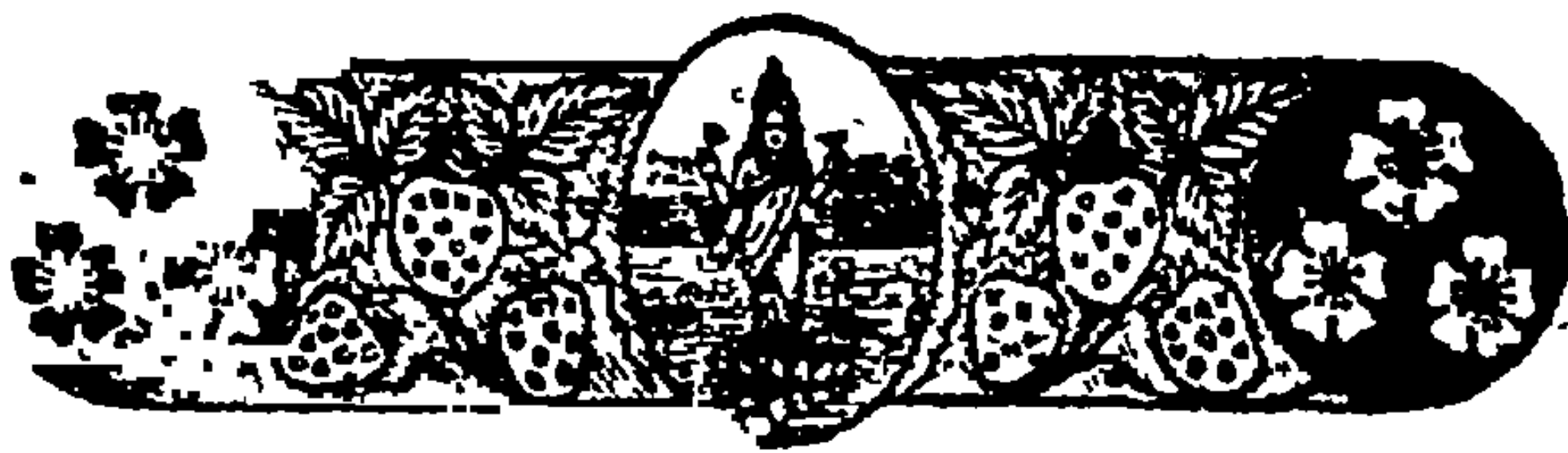
ग्यारहवाँ अध्याय

२—दान-विधान

धर्म्म भिक्षुक स्नातक ब्राह्मण नौ तरह के होते हैं अर्थात्—

(१)—सन्तान के लिये विवाह की इच्छा वाले।

(२)—यज्ञ करने के अभिलाषी।

(३)—रास्ता चलने वाले।

(४)—गुरु के भोजन वस्त्र के लिये जिन्हें धन की आवश्यकता पड़ती है।

(५)—माता के भोजन वस्त्र के लिये धन चाहने वाले।

(६)—पिता के निर्वाह के लिये धन की चाहना करने वाले।

(७)—पढ़ने वाले।

(८)—रोगी।

(९)—सर्वस्व दक्षिणा युक्त विश्वजित यज्ञ करने वाले।

असल में दान के यथार्थ पात्र ये ही ब्राह्मण हैं। राजा को चाहिये कि यथा-योग्य रत्न और यज्ञ की दक्षिणा इन ब्राह्मणों को दे।

मनुष्य को चाहिये कि पहिले अपने दुःखी और भूखे कुटुम्बियों का पालन पोषण करे। जो अपने घर वालों को दुःखी छोड़ कर, बाहर वालों को खिलाता पिलाता और उढ़ाता पहिनाता है-वह दान नहीं करता। देखने में भला होने पर भी परिणाम उसका अच्छा नहीं होता।

जो मनुष्य पालने योग्य स्त्री पुत्रादि का पालन न कर के परलोक सुधारने के लिये दूसरों को दान देता है-उसे दोनों लोकों में (इस लोक और परलोक में) दुःख भोगना पड़ता है।

जो पुरुष दुष्टों से धन छीन कर साधुओं को देता है वह मानों नाव बन कर, उन दोनों को संसार-रूपी समुद्र के पार उतार देता है।

यज्ञ करने वाले के धन को ज्ञानी लोग देवस्व (अच्छा धन) समझते हैं और जो कभी यज्ञ नहीं करता, उसके धन को राक्षसों का धन जान कर, न लेने योग्य समझते हैं।

२—ब्रह्म-बल

धर्म्म जानने वाला ब्राह्मण किसी वर्ण वाले के दुष्ट कर्म्म की फरियाद न करे। वह अपने ब्रह्म-बल ही से दुष्ट को दुष्ट कर्म्म का फल चखावे।

राज-बल और ब्रह्म-बल के बीच ब्रह्म ही श्रेष्ठ है। इसलिये ब्राह्मण को अपने ही से दुष्ट को दण्ड देना चाहिये।

ब्राह्मण अथर्व-वेद की अङ्गिरसी श्रुति को पढ़ कर, शत्रु को शाप से नष्ट करे। ब्राह्मण का वचन ही उसका शस्त्र है।

३—प्रायश्चित्त और पापों के फल

अनजाने किया हुआ पाप वेद पढ़ने से दूर होता है, पर जानबूझ कर किये हुए पापों के अलग अलग प्रायश्चित्त हैं।

जो पापी जानबूझ कर, प्रायश्चित्त नहीं करता, उसे साधु की सङ्गत न करनी चाहिये।

सोना चुराने वाले के नाखून बुरे होते हैं। जो शराब पीता है, उसका दाँत काले होते हैं। ब्राह्मण मारने वाले को क्षयी रोग होता है और गुरु पत्नी के साथ खोटा काम करने से शरीर का चाम बिगड़ जाता है।

चुगलखोर को पीनक (नाक से दुर्गन्ध का आना) की बीमारी होती है। झूठ मूठ निन्दा करने वाले के मुँह में बास आने लगती है। धन के चुराने वाले का कोई अङ्ग टूट जाता है, या कम होता है और जो नाज में मिलावट कर के बेचता है, उसके अधिक अङ्ग होते हैं।

अन्न चुराने वाले की अग्नि मन्द* पड़ जाती है और गुरु के बिना सिखाये दूसरे का पाठ सुन कर, पढ़ने वाला पुरुष गूंगा होता है। कपड़ा चुराने वालों के सफ़ेद कोढ़ हो जाती है और जो घोड़ा चुराता है वह लङ्गड़ा होता है।

दीपक चुराने वाला अन्धा, दीपक बुझाने वाला काना-जीवों के मारने वाले को तरह तरह की बीमारियाँ होती हैं और जो पराई स्त्री के साथ खोटा काम करता है-उसका शरीर बादी से मोटा पड़ जाता है।

---

*भूख का कम लगना।

१-ब्रह्म-हत्या, २-मदिरा पान, ३-ब्राह्मण का सोना चुराना ४-गुरु-पत्नी के साथ खोटा काम और ५-इन पापियों के साथ एक वर्ष तक रहना-इन पाँचों को महा-पातक कहते हैं।

अपनी बड़ाई करने के लिये डींगें हाँकना (अर्थात् झूठ बोलना) राजा से दूसरों की चुगली खाना और गुरु को झूठे समाचार सुनाना-ये भी "ब्रह्म-हत्या" के बराबर हैं।

अभ्यास न कर के ब्राह्मण का वेद भूल जाना, वेद की निन्दा करना, झूठी गवाही देना, मित्र-वध, अनखानी वस्तुओं का खाना —ये छः काम मदिरापान करने के बराबर हैं।

किसी की धरोहर को हड़प जाना मनुष्य, घोड़ा, चाँदी, पृथिवी, हीरा और रत्नों का चुराना "सोने" की चोरी के समान हैं।

सगी बहिन, कुमारी, चाण्डालिन, सखा और मित्र की भार्य्या के साथ खोटा काम करना, "गुरु-पत्नी" के साथ खोटा काम करने के बराबर है। ब्रह्म-हत्यारे को पाप छुड़ाने के लिये, कुटी बना कर और भीख माँग कर, बारह वर्ष वन में रहना चाहिये और वह आदमी की खोपड़ी हाथ में सदा लिये रहे, जिससे लोगों को उसका ब्रह्म-हत्यारा होना मालूम हो जाय।

अगर कोई द्विज जान बूझ कर, मदिरा पी ले, तो उसे इस पाप को छुड़ाने के लिये—मदिरा को खूब तपा कर, गर्म करना चाहिये। जब मदिरा अच्छी तरह खौलने लगे, तब उसे पीये। इस मदिरा से यदि उसका शरीर जल जाय तो समझे कि मदिरा-पान का प्रायश्चित हो गया*।

* देखो अ० ११ का ९१ वाँ श्लोक।

मदिरा अन्न का मल है। मल को पाप कहते हैं। इसलिये द्विजातियों को शराब न पीना चाहिये।

जिसके शरीर में बैठा हुआ ब्रह्म एक बार भी मद्य से भींगता है, उसका ब्राह्मणत्व जाता रहता है और वह शूद्र के समान हो जाता है।

सोना चुराने का पाप राजा से दण्ड पाने पर जाता रहता है। ब्राह्मण इस पाप को तपस्या करके भी हटा सकता है।

जो गुरु-पत्नी के साथ खोटा काम करने के पाप का प्रायश्चित्त करना चाहे, तो उसे एक लोहे की स्त्री बनवा कर, उसे तपाना चाहिये। जब वह गर्म हो कर लाल सुर्ख हो जाय, तब उसमें वह पापी चिपट जाय। उसके साथ तब तक चिपटा रहे जब तक प्राण निकल न जाँय। प्राण निकलने ही से इस पाप से छुटकारा मिलता है।

बालकों को मारने वाला, कृतघ्न (किये को मेटने वाला) शरण आये को मारने वाला और स्त्री को मारने वाला, यदि विधिवत् प्रायश्चित करके शुद्ध भी हो जाँय तो भी इनके साथ किसी तरह का व्यवहार न रखना चाहिये।

ज्ञान का बढ़ाना, ब्राह्मणों की; रक्षा करना, क्षत्रियों की; खेती व्यापार और पशु-पालन वैश्यों की तपस्या है। शूद्रों का तप सेवा करना है।

४—तपस्या का फल

जो न पूरे होने योग्य काम हैं-वे तपोबल से पूरे होते हैं।

शरीर मन और वचन से लोग जो पाप करते हैं, तपस्वी अपने तपोबल से उसे शीघ्र नष्ट कर देते हैं।

तपस्या से पाप-रहित ब्राह्मणों के यज्ञ का हवि ले कर, देवता उन्हें मनमाना फल देते हैं।

सब लोकों के प्रभु ब्रह्मा ने तपोबल ही से इस शास्त्र को रचा है। तपस्या कर के ही ऋषियों ने वेदों को पाया है।

जैसे अग्नि में पलक मारते, तिनके और घास जल भुन कर, राख हो जाते हैं, वैसे ही ज्ञान की अग्नि में सारे पाप जल भुन कर, राख हो जाते हैं।

५—वेद-माहात्म्य

जिस प्रकार यज्ञों का राजा अश्वमेध सब पापों का नाशक है, वैसे ही "अघमर्षण-सूक्त"* का पाठ सब पापों का नाश करने वाला है।

अगर ब्राह्मण को वेद का पूरा पूरा ज्ञान है, तो वह वेद के सहारे तीनों लोकों को भस्म करने और जहाँ तहाँ भोजन करने से भी पापी नहीं होता।

ध्यान लगा कर ऋक्, यजु और साम वेद की संहिता का पाठ करने से, ब्राह्मण सब पापों से छूट जाता है।

जैसे तालाब में डेला फेंकने से वह तुरन्त डूब जाता है, वैसे ही सारे पाप तीनों वेदों के पाठ में डूब जाते हैं।

सब वेदों का आदि तीन अक्षर वाला-ओं (अ+उ+म) भी वेद है। जो पुरुष भली भाँति इसे जानता है वह "वेदवित् अर्थात् वेदों का जानने वाला कहलाता है।

---

* यह वेद के एक विशेष मंत्र का नाम है।

बारहवाँ अध्याय

१—कर्मयोग का निर्णय

शरीर, मन और वचन से जो अच्छे बुरे कर्म्म किये जाते हैं-उनके फल ही से मनुष्य की उत्तम, मध्यम और अधम-गति होती है।

मनुष्यों को अच्छे बुरे कामों में लगाने वाला मन है।

अन्याय पूर्वक दूसरे का धन लेने की इच्छा, दूसरों का बुरा सोचना; और "परलोक नहीं है"—ऐसे विश्वास,—इन तीनों को "मानस-पाप" कहते हैं।

कठोर वचन बोलना, झूठ बोलना, पीठ पीछे बुराई करना, राजा प्रजा अथवा किसी विशेष नगर निवासी के बारे में ऊट पटाङ्ग गप्पें उड़ाना—ये चार वाणी के पाप हैं।

बिना दिया हुआ धन लेना, हिंसा करना, पर स्त्री की सेवा करना ये तीन शारीरिक पाप हैं।

मन से किये हुए कर्मों का मन से, वाणी का वाणी से और शरीर का अच्छा बुरा भोगमान, शरीर से भोगना पड़ता है।

शारीरिक पापों से मनुष्य मर कर, अगले जन्म में पेड़ की योनि में जन्मता है। वाणी के पापों का फल पक्षी और पशु बन कर, भोगना पड़ता है और मानसिक दोषों से मनुष्य को चाण्डालादि नीच जाति में जन्मना पड़ता है।

पापी को मर कर, अगले जन्म में अपने पापों के फल भुगतने के लिये दूसरा शरीर अवश्य धारण करना पड़ता है।

२—गुण-निरूपण

महत्तत्व आत्मा के सत्व, रज और तम तीन गुण हैं। इनमें जिस गुण की मात्रा जिसके शरीर में अधिक होती है—उसमें उसी गुण के अधिक लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

सतो-गुण से ज्ञान, रजो गुण से अज्ञान और तमो-गुण से रागद्वेष दिखलाई पड़ता है। ऐसा कोई भी शरीर-धारी नहीं है जिसके शरीर में, ये तीनों गुण विद्यमान न हों।

वेदाभ्यास, तपस्या, ज्ञान शौच, इन्द्रिय-संयम, धर्म्मानुष्ठान, और आत्म चिन्ता, ये सब सतो-गुण के कार्य्य हैं।

फल पाने के लिये काम करना, धीरज छोड़ देना, बुरे काम करना और विषय-वासना में डूब जाना—रजो-गुण के कार्य्य हैं।

सोना, अधीरता, क्रूरता, नास्तिकता, अनुचित काम करना माँगना और प्रमाद—ये तमोगुण के लक्षण हैं।

सत्व-गुणी मनुष्य मर कर देवता बनते हैं और जो रजो-गुणी हैं वे मनुष्य होते हैं। तमो-गुणियों को दूसरे जन्म में कीट आदि तिर्यक् योनि में जन्म लेना पड़ता है।

३—गुणों के भेद

१—तमो-गुण की अधम श्रेणी में—वृक्षादि, कृमि, कीट, मछली, साँप, कछुए, पशु और मृग सम्मिलित (शामिल) हैं।

२—जिन तमोगुणियों को मध्यम श्रेणी में जन्म लेना पड़ता है—वे ये हैं, हाथी, घोड़ा, निन्दित शूद्र, म्लेच्छ, सिंह, व्याघ्र, सूअर।

३—तमो-गुण की उत्तम श्रेणी में, चारण, पक्षी, छली आदमी, राक्षस और पिशाच माने जाते हैं।

१—रजो गुणी की अधम श्रेणी में, फल, मल्ल, नट, शास्त्र बना कर पेट पालने वाले, जुवारी और शराबी समझे गये हैं।

२—राजा लोग, क्षत्रिय, राज-पुरोहित, लड़ाकू, रजो-गुण की मध्यम श्रेणी में हैं।

३—रजो-गुण की उत्तम श्रेणी में गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, देव-दास, अप्सरा हैं।

१—सत्व-गुण की अधम श्रेणी में वे हैं, जो तपस्वी, संन्यासी विप्र, विमानों में बैठ कर घूमने वाले, नक्षत्र और दैत्य हैं।

२—यज्ञ करने वाले, ऋषि, देव, तारे, वेद, काल के चीन्हने वाले, पितर और साध्य, सत्व-गुण की मध्यम श्रेणी में समझे जाते हैं।

३—सत्व-गुण की उत्तम गति में—ब्रह्मा, मरीचि आदि प्रजा-पति धर्म्म, महत्तत्व और अव्यक्त* गिने जाते हैं।

अपनी इन्द्रियों को अपने वश में न रखने से और धर्म्मा-चरण न करने से, मूर्खों को अधम गति मिलती है।

---

* साँख्य के दो प्रसिद्ध तत्वों को अव्यक्त कहते हैं।

४—कर्म्मानुसार योनि

ब्रह्म-हत्यारे को—कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट, बैल, बकरा, भेड़, मृग, पक्षी, चाण्डाल और पुकस की योनि में जन्म लेना पड़ता है।

कीड़े, मकोड़े, पतङ्गे, मैला खाने वाले पक्षी और हिंसा करने वाले जीवों की योनि में उस ब्राह्मण को जन्म लेना पड़ता है, जो शराब पीता है।

चोर ब्राह्मण को ; मकड़ी, गिरगट, साँप, जलचारी (कछुवा, मगर, सूँस, आदि) और हिंसक पिशाच की योनि में जन्म लेना पड़ता है।

जो गुरु की पत्नी के साथ खोटा काम करता है—उसे घास, गुच्छे, लता, कच्चा माँस खाने वाला और बुरे काम करने वालों की योनि में सैकड़ों बार जन्म लेना पड़ता है।

जो जीवों को मारता है, उसे कच्चा माँस खाने वाला बनना पड़ता है और अनखानी चीज़ खाता है उसे कीड़े, चोर और आपस में एक दूसरे को खाने वाला होना पड़ता है। नीच जाति की स्त्री के साथ खोटा काम करने वाले को प्रेत योनि में जन्म लेना पड़ता है।

जो मणि, मोती, मूँगा और दूसरे रत्न चुराता है वह सुनार के घर जन्म लेता है।

अन्न चुराने वाला चूहा, काँसा चुराने वाला हँस, जल-चोर मेंढ़क, शहद का चोर मक्खी या डाँस, दूध का चोर कौआ, रस का चोर कुत्ता और घी के चोर को नेवले की योनि में जन्म लेना पड़ता है।

रेशमी वस्त्रों का चोर तीतर होता है। अलसी के कपड़े चुराने वाला मेंढ़क होता है। कपास का चुराने वाला सारस, गाय का चोर गोह और गुड़ का चुराने वाल वाग्गुद पक्षी होता है।

जो सुगन्धित वस्तुओं को चुराता है, उसे छछूँदर बनना पड़ता है। साग पात चुराने वाला मोर बनता है। बना हुआ भोजन चुराने वाला गीदड़ और कच्चा अन्न चुराने वाला शाल्यक (सेही) होता है।

जो आग चुराता है उसे बगला, जो सूप, मूसल आदि चुराता है उसे मकड़ी और रङ्गीन कपड़े चुराता है उसे चकोर बवना पड़ता है।

मृग और हाथी को चुराने से भेड़िया, घोड़ा चुराने से *व्याघ्र, फल-मूल चुराने से वन्दर, स्त्री चुराने से रीछ, पानी* चुराने से पपीहा, सवारियाँ चुराने से ऊँट और पशुओं के चुराने से बकरा होना पड़ता है।

अगर स्त्रियाँ दूसरे की वस्तु चुरावें तो उन्हें भी ऊपर कही हुईं, सब तरह की योनियाँ प्राप्त होती हैं। पर वे नर न हो कर मादा बन कर, जन्म लेती हैं।

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अपने कर्म्म धर्म्म न करें—तो उन्हें नीच योनि में जन्म धारण कर, अपने वैरी का दास बनना पड़ता है।

५—मुक्ति पाने के उपाय

वेद पढ़ने, तपस्या करने, ज्ञान सञ्चित करने, इन्द्रियों को अपने वश में रखने, हिंसा न करने और गुरु की सेवा करने से मनुष्यों को मुक्ति (मोक्ष) मिलती है।

ऊपर कहे मोक्ष के साधनों में आत्मज्ञान (अपने को पहिचानना) ही सब से बढ़ कर है। यही सब विद्याओं का निचोड़ है। इसीसे मोक्ष मिलती है। कर्म्म दो प्रकार के हैं १-"प्रवृत्त-कर्म्म" और २-"निवृत्त-कर्म्म"।

इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी किसी कामना को पूरा करने के लिये जो काम किया जाता है उसे "प्रवृत्त-कर्म्म" कहते हैं।

पर जान कर, जो निष्काम (कर्म्म का फल पाने की इच्छा छोड़ कर.) कर्म्म किया जाता है, उसे "निवृत्त-कर्म्म" कहते हैं।

प्रवृत्त-कर्म्म करने से मनुष्य देवताओं के समान हो सकता है और निवृत्त-कर्म्म करने से मनुष्य जीवन मरण के बन्धन से छूट कर मोक्ष पाता है।

जो सब जीवधारियों में परमात्मा को देखता है और जिसे परमात्मा सर्व-जीव-मय दिखलाई पड़ता है—वही मनुष्य मोक्ष पाता है।

६—उपसंहार

इस मनुस्मृति में सब तरह के धर्म्म कहे गये हैं। पर जिन विशेष धर्म्मों का उल्लेख नहीं है—उनके बारे में यदि झगड़ा उठे, तो शिष्ट ब्राह्मण जो कहें, संशय छोड़कर, उसे ही धर्म्म समझना चाहिये।

वे ब्राह्मण शिष्ट कहलाते हैं, जिन्होंने-विधि पूर्वक वेद वेदाङ्ग और धर्म्म शास्त्रादि पढ़े हैं।

या, जिस सभा में दस अथवा तीन से कम ब्राह्मण न हों उस सभा में धर्म्म निर्णय हो, उसे ही धर्म्म कहते हैं।

धर्म्म-सभा में, तीनों वेदों के जानने वाले, अनुमान प्रमाण में निपुण, तर्क में चतुर, निरुक्ति-कुशल और मानव धर्म्मशास्त्र जानने वाले दस गृहस्थ, ब्रह्मचारी और वाणप्रस्थ होने चाहिये।

मनु के पुत्र भृगु की कही हुई इस मनुस्मृति को पढ़ने वाले आचारवान् होते और अभीष्ट गति को पाते हैं।

॥ इति ॥

पं० रामप्रसाद वाजपेयी के प्रबन्ध से कृष्ण प्रेस, प्रयाग में छपी।